



2025:AHC:204204:-DB

प्रतिवेद्य

सुरक्षित: 08.12.2025

पारित: 20.01.2026

न्यायालय सं-34

रिट ए संख्या - 6218 वर्ष 2004

रमेश चंद्र सिंह ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के लिए अधिवक्ता: एच जी एस परिहार, वरिष्ठ अधिवक्ता; अजय कृष्ण यादव; अनिल कुमार मौर्य; मंशा शुक्ला; मीनाक्षी सिंह; मीनाक्षी सिंह परिहार और विवेक मिश्रा

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता: देव प्रकाश मिश्रा, ए.सी.एस.सी.

माननीय न्यायमूर्ति श्री इंद्रजीत शुक्ला

प्रदर्श की सुविधा के लिए, इस निर्णय को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है: -

विषय-सूची

क्रम सं	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
A	तथ्यात्मक मैट्रिक्स	02-09
B	वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता	09-09
C	याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुति	09-11
D	राज्य प्रतिपक्षियों की ओर से सबमिशन	11-13
E	प्रासंगिक नियम	14-15
F	विश्लेषण और तर्क	15-33
G	निष्कर्ष	33-34

1- याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अजय कृष्ण यादव, राज्य प्रतिपक्षियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री देव प्रकाश मिश्रा को सुना।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने दिनांक 14.04.2000 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है, जो चौथे प्रतिवादी द्वारा पारित किया गया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सेवा से हटाया गया है तथा जिसे इस रिट याचिका के परिशिष्ट-1 के रूप में संलग्न किया गया है। इसी दिनांक का एक अन्य आक्षेपित आदेश भी चुनौती के अधीन है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के 14.05.1999 से 20.10.1999 तक की अनधिकृत अनुपस्थिति के कारण 160 दिनों के वेतन का अधिहरण किया गया है। याचिकाकर्ता ने आगे दिनांक 29.09.2000 के उस आदेश की वैधता एवं शुद्धता को भी चुनौती दी है, जो तृतीय प्रतिवादी द्वारा अपील में पारित किया गया था, तथा द्वितीय प्रतिवादी द्वारा दिनांक 22.05.2004 को पारित पुनरीक्षण आदेश को भी चुनौती दी है, जिन्हें क्रमशः इस रिट याचिका के परिशिष्ट-3 एवं परिशिष्ट-4 के रूप में संलग्न किया गया है।

A. तथ्यात्मक मैट्रिक्स

3. प्रस्तुत रिट याचिका के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि, याचिकाकर्ता, जो अनुशासित बल यानी प्रांतीय शस्त्र कांस्टेबलरी (पीएसी) में कांस्टेबल था, 25 वीं बटालियन, पुलिस मुख्यालय, रायबरेली में तैनात था, 12.05.1999 को आकस्मिक अवकाश वर्ष 2 दिन के लिए गया और इस तरह उसे 15.05.1999 को कर्तव्यों की रिपोर्ट करनी थी, लेकिन 15.05.1999 को अपने कर्तव्यों की रिपोर्ट करने के बजाय वह 20.10.1999 तक अनुपस्थित हो गया था, यानी लगभग 160 दिन और इस पृष्ठभूमि में प्रारंभिक जांच का निदेश दिया गया था और आयोजित किया गया था, उसके बाद दिनांक 05-01-2000 के आरोप पत्र के माध्यम से मुख्य रूप से अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप में आरोप पत्र के माध्यम से नियमित जांच शुरू की गई थी। आरोप पत्र का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है: -

"आपको एतद्द्वारा निम्नानुसार आरोपित किया जाता है:-

यह कि जब आप वर्ष 1999 में "ई" दल में नियुक्त थे, तब दिनांक 12.5.99 से स्वीकृत 02 दिवस आकस्मिक अवकाश पर प्रस्थान किया। बाद समाप्त अवकाश दिनांक 14.5.99 को वापस आना था, परन्तु आप समय से वापस न आकर दिनांक 20.11.99 को 160 दिवस मनमाने तौर पर अनुपस्थित रहकर आमद कराई।

इस प्रकार आप कर्तव्य के प्रति लापरवाही, उदासीनता एवं अनुशासनीयता के दोषी पाये गये। साक्ष्य जिन पर आरोप के समर्थन में विचार किये जाने का प्रस्ताव है:-



1- श्री महेश प्रसाद दबू, शिविर पाल- प्रारम्भिक जाँच करना प्रस्तावित करेंगे।

2- पी०सी० श्री शिवराम कुशवाहा, जी दल- दि० 12.5.99 से 02 दिवस आकस्मिक अवकाश स्वीकृत

करने की पुष्टि करेंगे।

3- नायक 31997 सरदारअली "ई" दल- अवकाश पर रवानगी करने की पुष्टि करेंगे।

4- आरक्षी 32087 मूलचन्द्र गौतम वाहिनी जी०डी० लेखक- अवकाश अनुपस्थिति से आमद करना

प्रमाणित करेंगे।"

5- आरक्षी 32168 मु० इसराइल अली "ई" दल- अवकाश से अनुपस्थिति की रपट अंकित करना प्रमाणित करेंगे।

अभिलेखीय साक्ष्य

1- स्वीकृत आकस्मिक अवकाश प्रार्थना पत्र

2- जी०डी० "ई" दल व मुख्यालय शाखा की नकल रपट

3- आवागमन रजिस्टर एल०पी० मेनगोट

इस प्रकार उपरोक्तानुसार आप दिनांक 12.5.99 से स्वीकृत 02 दिवस आकस्मिक अवकाश पर प्रस्थान करने, बाद समाप्त अवकाश दिनांक 14.5.99 को वापस न आकर दिनांक 20.10.99 को 160 दिवस मनमाने तौर पर अनुपस्थित रहकर आमद कराने तथा कर्तव्य के प्रति लापरवाही, उदासीनता एवं अनुशासनहीनता के दोषी हैं।

एतद्वारा आपसे आरोप के उत्तर में अपने बचाव का लिखित विवरण दिनांक 13.1.2000 को या उसके पूर्व प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है। आपको सचेत किया जाता है कि अधोहस्ताक्षरी द्वारा अनुमन्य समय के भीतर पसे ऐसा कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है तो यह अवधारणा की जायेगी कि आपको कुछ नहीं प्रस्तुत करना है, आपके मामलें में तदनुसार आदेश पारित कर दिया जाएगा।

साथ ही साथ आपसे अधोहस्ताक्षरी को लिखित रूप से यह सूचित करने की अपेक्षा की जाती है कि क्या आप व्यक्तिगत सुनवाई के लिए इच्छुक हैं और यदि आप किसी साक्ष्य



या परीक्षण प्रति परीक्षा करना चाहते हैं तो अपने लिखित विवरण के साथ उसका नाम और पता और साक्ष्य का जिसे प्रत्येक ऐसे साक्षी से देने की प्रत्याशा की जायेगी, संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है।"

4. आरोप पत्र में पांच गवाहों से मौखिक रूप से पूछताछ करने का प्रस्ताव किया गया था और अनधिकृत अनुपस्थिति को प्रदर्शित करने वाले कुछ दस्तावेजी साक्ष्य भी आरोपपत्र के साथ संलग्न किए गए थे।

5. आरोप पत्र प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने 17.01.2000 को जांच अधिकारी के समक्ष अपना जवाब प्रस्तुत किया, जिसमें उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ता को 15.05.1999 को रिपोर्ट करना था, लेकिन वह वापस नहीं आ सका क्योंकि उसने छुट्टी के विस्तार के लिए एक आवेदन भेजा। जांच अधिकारी ने निर्धारित अवधि से अधिक समय तक ठहरने/अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोपों को साबित करने के लिए आरोपपत्र के कैलेंडर में उद्धृत गवाहों की जांच की और अभिलेखों से पता चलता है कि गवाहों से जिरह करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा इसका लाभ नहीं उठाया गया था, क्योंकि जांच अधिकारी द्वारा जांच किए गए गवाहों के मौखिक साक्ष्य/गवाही पर कोई आरोप नहीं लगाया गया था।

6. याचिकाकर्ता ने अपने मामले को सिद्ध करने हेतु दो चिकित्सकों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया, अर्थात् डॉ. फिरोज आलम अंसारी, चिकित्सा अधिकारी, नवीन प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, सहसों, जिला इलाहाबाद तथा डॉ. परसनाथ राय, चिकित्सा अधिकारी, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, कोटवा, इलाहाबाद। याचिकाकर्ता ने अपनी अनुपस्थिति के औचित्य के रूप में अस्वस्थता का आधार लेने के साथ-साथ एक वैकल्पिक आधार यह भी लिया कि उसका मकान, जो जर्जर अवस्था में था, ढह गया था, जिसके कारण वह अपने मकान के निर्माण कार्य में व्यस्त था तथा उसकी अनुपस्थिति को स्वेच्छिक नहीं कहा जा सकता, अपितु वह बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण थी। उक्त मकान के ढहने के दावे को सिद्ध करने हेतु याचिकाकर्ता ने तत्कालीन ग्राम प्रधान जबर सिंह को भी साक्ष्य के रूप में परीक्षित कराया।

7. जांच अधिकारी ने बचाव पक्ष के गवाहों जबर सिंह (गांव के प्रधान), डॉ. फिरोज आलम से पूछताछ की। अंसारी और डॉ. पारस नाथ राय की बैठक में विस्तार से चर्चा की जाएगी।



8. गवाहों की सावधानीपूर्वक जांच के बाद, जांच अधिकारी ने 21.03.2000 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो रिट याचिका के अनुलग्नक-7 के रूप में निहित है। आरोप साबित होने को प्रदर्शित करने के लिए, जांच रिपोर्ट का प्रासंगिक हिस्सा यहां निकाला गया है: -

"अभियोजन पक्ष एवं बचाव पक्ष की कार्यवाही समाप्त हो जाने के बाद मैंने पत्रावली पर उपलब्ध समस्त साक्षियों के बयान, अभिलेखों एवं आरोपित पक्ष द्वारा बचाव पक्ष में प्रेषित स्पष्टीकरण एवं स्पष्टीकरण के साथ प्रेषित ग्राम प्रधान के द्वारा घर बनवाने व दूसरे घर में रहने व घर गिरने का प्रमाण-पत्र, बचाव पक्ष के गवाहानों के बयानों का गहनता से अध्ययन किया। उपरोक्त गवाहानों के बयानों से यह प्रमाणित होता है कि आरोपित आरक्षी 32091 रमेश चन्द्र सिंह दिनांक-11-5-99 को 02 दिवस आकस्मिक अवकाश पर 'जिला कारागार लखनऊ ई दल से रवाना हुआ। समय से न आकर दिनांक-20-10-99 को 159 दिवस 11 घंटा 10 मिनट अनुपस्थित रहकर अपनी इच्छानुसार वापस आकर वाहिनी मुख्यालय में आमद कराया जिसको पुष्टि सुबूत पक्ष के साक्षी दलनायक श्री अवधनारायण-तिवारी, पीसी श्री शिवरामकुशवाहा, कम्पनी जीडी लेखक नायक 31997 - सरदार अली, वाहिनी जीडी लेखक आरक्षी 32087 मूलचन्द्र गौतम के बयानों से होती है। आरक्षी के कम्पनी मुख्यालय 'ई' दल जिला कारागार लखनऊ में 02 दिवस अवकाश पर आमद की तिथि से अवगत होकर घर जाना तथा वापसी के दिन दिनांक-14-5-99 को सेनानायक के नाम रजिस्ट्री पत्र. 05-दिवस आकस्मिक अवकाश उसी क्रम में बढ़ाने के लिये यह अंकित कर देना कि उसका मकान दिनांक-12-5-99 को आँधी तूफान में गिर गया है बच्चों के रहने, लायक नहीं है तथा स्पष्टीकरण में दिनांक-12-5-99 से स्वयं को विमार होना अंकित करना दोनों में विरोधाभास है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह झूठ बोला है विमार नहीं था, वरना वह दिनांक-14-5-99 के मकान गिर जाने के सम्बन्ध में दिये गये रजिस्ट्री में विमार होना अवश्य अंकित करता। यह मान लिया जाय कि उसका मकान दिनांक-12-5-99 को गिर गया 05 दिवस उसी क्रम में अवकाश बढ़ाने के लिये रजिस्ट्री दिया फिर भी वह 05 दिवस बाद वापस डियूटी पर नहीं आया न ही किसी प्रकार की विमारी या इलाजरत रहने की कोई सूचना ही दिया, न ही वाहिनी मुख्यालय आकर अवकाश ही स्वीकृत कराने का प्रयाप्त किया सिर्फ विमारी का बहाना बनाकर मनमाने तौर पर अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा व डाक्टर से मिलकर विमारी का प्रमाण-पत्र बनवा कर मेडिकल अवकाश का उपभोग किया। अगर वह विमार था तो उसे नियमतः अपने जिले के पुलिस अधीक्षक से मिलकर सिकबक लेकर आमद रवानगी के साथ पुलिस अस्पताल जिला अस्पताल जाता तथा भर्ती होकर अपना विधिवत स्वास्थ्य परीक्षण

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



कराने के उपरान्त इलाज कराता व इस कार्यालय को सूचित करता तथा चिकित्सालय से मुक्त होने के उपरान्त चिकित्सक के द्वारा दिये गये रेस्ट प्रमाण-पत्र के साथ वाहिनी मुख्यालय आकर अवकाश स्वीकृत कराता, तदोपरान्त अवकाश का उपभोग करता परन्तु वह मनमाने तौर पर अपने इच्छित अस्पताल जाकर वाह्य रोगी के रूप में इलाज कराया और एक भी दिन चिकित्सालय में भर्ती नहीं रहा। इतनी लम्बी अवधि तक वाह्य रोगों के रूप में इलाज कराना संदेहास्पद है जो यह प्रमाणित करता है कि वह विमार नहीं था बल्कि अपनी अनुपस्थित अवधि को प्रमाणित करने के लिए चिकित्सकों से व्यक्तिगत रूप से स्वयं द्वारा विमारी बताकर उनसे दवा लिखाया व चिकित्सा प्रमाण-पत्र बनवाया, जो पुलिस रेगुलेशन के प्रस्तर 381 एवं 383 का स्पष्ट उल्लंघन है तथा विना किसी अधिकारी के संज्ञान में लाये कर्तव्य से विना स्वीकृति अवकाश अनुमति के अनुपस्थित हो जाना उसकी घोर लापरवाही एवं अनुशासनहीनता का परिचायक है।

बचाव पक्ष के साक्षी ग्राम प्रधान श्री जबर सिंह ग्राम बभनकुईयाँ थाना- सरायईनायत, जनपद- इलाहाबाद के वयानों से यह प्रमाणित है कि आरक्षी रमेश चन्द्र सिंह का मकान 2-3 साल पहले गिर गया था नये मकान में 2-3 साल से रह रहे हैं, लेकिन अपने दिनांक-4-2-2000 के मकान बनवाने के प्रमाण-पत्र में मकान गिरना मई सन् 1999 अंकित किये हैं, दोनों में विरोधाभास है जिससे यह स्पष्ट होता है कि आरक्षी रमेश चन्द्र सिंह ने मकान गिरने का प्रमाण-पत्र ग्राम प्रधान से कहकर अपने मन माफिक बनवाया है। ग्राम प्रधान ने विमारी के बारे में कुछ नहीं बताया। अगर आरोपी आरक्षी रमेश चन्द्र सिंह वास्तव में विमार होता तो ग्राम प्रधान को अवश्य-मालूम होता। मेरे द्वारा उक्त आरोपित आरक्षी के घर जाकर उसके मकान का भौतिक रूप से निरीक्षण भी किया गया। मकान तो गिरा था परन्तु काफी दिन का। दो कमरे का पक्का ईट का मकान बनवाया है जिसकी सिर्फ दिवाल खड़ी है छत नहीं पड़ा है। जिस मकान में रह रहा है वह मकान कच्चा मिट्टी का बना हुआ है, मजबूत है, रहने की कोई परेशानी नहीं है। वह मकान बनवाने व विमार होने का सिर्फ नाटक किया है उसे ऐसी कोई परेशानी नहीं थी कि वह डियूटी पर नहीं आ सकता था। क्योंकि ग्राम प्रधान के बयान से यह भी स्पष्ट है कि उसके पिता घर की खेती स्वयं करते हैं और जरूरत पड़ने पर मजदूर भी रख लेते हैं। उसके पिता खेती कर सकते हैं तो मकान भी अपनी देख-रेख में बनवा सकते थे। आरोपी ने मकान बनवाने में 30 दिवस लगना बताया है। ग्राम प्रधान ने चार-पाँच माह, जबकि मेरे द्वारा आरोपी के घर के भौतिक निरीक्षण में पाया गया कि वह जो पक्के ईट का मकान बनवाया है दो छोटे-छोटे कमरे व एक छोटा बरामदा है सिर्फ दिवाल खड़ी है



छत नहीं पड़ा है वैसा ढांचा खड़ा करने में सिर्फ 15 दिवस का समय लग सकता है लेकिन उसने 30 दिवस का समय लगना बताया है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि जब उक्त आरोपित आरक्षी विमार था डियूटी पर नहीं आ सकता था तो घर कैसे बनवाया, विमार होकर जब घर बनवा सकता है तो डियूटी पर वापस भी आ सकता है जिससे स्थिति स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि वह विमार नहीं था सिर्फ विमारी का बहाना बनाया है। डा० फिरोज आलम नवीन प्रा० स्वा० केन्द्र सहसो-इलाहाबाद के बयान से यह प्रमाणित होता है कि उक्त आरक्षी ने बुखार से पीड़ित होना बताया जिस पर डाक्टर ने उसे कुछ दवा दिया व कुछ बाजार से क्रय

करने को कहा व दिनांक-12-5-99 से 10-6-99 तक रेस्ट दिया लेकिन ओ. पी. डी. रजिस्टर में सिर्फ 3 सप्ताह ही अंकित किया था, पूछने पर डाक्टर ने बताया कि 2-4 दिवस और बढ़ा दिया था लिखने को भूल गया था। डाक्टर ने यह भी स्पष्ट किया है कि वह बीच-बीच में आते रहे मगर रजिस्टर में अंकित नहीं किया, जिससे स्पष्ट है कि वह विमार नहीं था सिर्फ डाक्टर से मिलकर मेडिकल प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है क्योंकि अगर वह वास्तव में विमार रहता, बीच-बीच में डाक्टर को दिखाता तो वह ओ. पी. डी. रजिस्टर में अंकित होता मगर दवा लेना या बीच-बीच में दिखाना कहीं ओ. पी. डी. रजिस्टर में अंकित नहीं है जिसकी पण्टि डाक्टर फिरोज आलम ने स्वयं किया है। डाक्टर द्वारा रजिस्टर में 3 सप्ताह का रेस्ट देना तथा मेडिकल प्रमाण-पत्र में 30 दिवस अंकित करना व बयान में 28 दिवस का मेडिकल रेस्ट देना ही यह स्पष्ट करता है कि डाक्टर ने सिर्फ उक्त आरक्षी के कहने पर मेडिकल प्रमाण-पत्र दे दिया है विमार नहीं था। डाक्टर पारस नाथ राय प्रा० स्वा० केन्द्र कोटवा-इलाहाबाद के बयान से यह प्रमाणित होता है कि उसने अपनी अनुपस्थिति अवधि को प्रमाणित करने के लिये पेशाब में जलन व बुखार बताकर चिकित्सा प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है। डाक्टर के कथनानुसार उसे अस्पताल से दवा भी नहीं दी गयी है पर्चे पर दवा लिखी गयी तथा अपने अधिकार क्षेत्र में सिर्फ चार सप्ताह का रेस्ट देने का अधिकार बताया है जबकि मेडिकल प्रमाण-पत्र में उसे दिनांक-11-6-99 से 27-7-99 तक 47 दिवस का मेडिकल अवकाश देना अंकित है। डाक्टर के कथनानुसार उसे 47 दिवस में कितने दिन दवा दी गयी या चेकअप कराया गया नहीं पता न' ही कहीं ओ. पी. डी. रजिस्टर में ही अंकित है जिससे स्पष्ट है कि वह विमार नहीं था सिर्फ डाक्टर से मिलकर विमारी का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है फिर भी आरोपित आरक्षी ने दिनांक-12-5-99 से 10-6-99 तक डाक्टर फिरोज आलम अन्सारी नवीन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र सहसो-इलाहाबाद के यहाँ वाहय रोगी के रूप में इलाजरत रहा। अपने स्पष्टीकरण में यह अंकित किया है कि डाक्टर के फिटनेस के बाद वह दिनांक-10-6-99 को



फिर रात में विमार हो गया तथा दिनांक-11-6-99 से दूसरे डाक्टर श्री, पारसनाथ राय प्रा० स्वा० केन्द्र-कोटवा-इलाहाबाद को दिखाना अंकित किया तथा दिनांक-27-7- 99 तक वाह्य रोगी के रूप में इलाजरत रहना अंकित किया है जो नियमानुकूल नहीं है क्योंकि जब डा०-श्री फिरोज आलम अन्सारी ने दिनांक-10-6-99 को उक्त आरक्षी को फिटनेश दिया वह घर गया उसकी हालत पुनः उसी रात में खराब हो गयी उसने दूसरे डाक्टर श्री पारसनाथ राय प्रा० स्वा० केन्द्र-कोटवा-इलाहाबाद को दिखाया जबकि उसे उसी डॉक्टर के पास जाना चाहिए था जिसने फिटनेश दिया था, परन्तु वह अनुपस्थित व कर्तव्य से दूर रहने के लिए दूसरे डाक्टर का सहारा लिया, उसे चाहिए था कि दिनांक-10-6-99 को डाक्टर फिरोज आलम अन्सारी से फिटनेस मिलने के बाद उसी दिन अपने कर्तव्य पर वापस आता परन्तु ऐसा नहीं किया जो कर्तव्य के प्रति घोर लापरवाही एवं अनुशासनहीनता का द्योतक है तथा उसके घर से प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र सहसे-इलाहाबाद लगभग 2-3 किमी. है व प्रा० स्वा० केन्द्र कोटवा-इलाहाबाद लगभग 10-12 किमी. की दूरी पर है वहाँ जाने का औचित्य ही नहीं बनता। फिर भी डाक्टर श्री पारस नाथ राय प्रा० स्वा० केन्द्र कोटवा-इलाहाबाद द्वारा उक्त आरक्षी-32091 रमेश चन्द्र सिंह को दिनांक-27-7-99 को फिट घोषित कर दिया, उसको तत्काल वाहिनी मुख्यालय आना चाहिए था परन्तु वापस डियूटी पर न. आकर विना सूचना, विना अवकाश, विना मेडिकल ही मनमाने तौर पर घर ही रहा, जो इसके कर्तव्य के प्रति घोर लापरवाही व उदासीनता तथा अनुशासनहीनता का परिचायक है। आरोपित पक्ष द्वारा आरोप पत्र के उत्तर में प्रस्तुत स्पष्टीकरण एवं बचाव में प्रस्तुत स्पष्टीकरण में ऐसा कोई विन्दू नहीं रखा गया जिसपर विश्वास किया जा सके और जिसके आधार पर उसके विरुद्ध लगाये गये आरोप प्रमाणित न हो। उसके द्वारा दलनायक के नाम दिया गया आकस्मिक अवकाश का प्रार्थना पत्र को पीसी के द्वारा ही स्वीकृत करके अवकाश छोड़े जाने का तर्क भी मान्य नहीं है क्योंकि दलनायक के कम्पनी भार पर न रहने पर कम्पनी के भार पर नियुक्त पीसी को 03 दिवस अवकाश देने का अधिकार है।"

9. दिनांक 21.03.2000 की जांच रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद याचिकाकर्ता को प्रस्तावित सजा के संबंध में 21.03.2000 को ही कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। इसके बाद, 24.03.2000 और 29.03.2000 को अनुस्मारक नोटिस भी जारी किए गए थे, लेकिन स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता ने बार-बार अवसर दिए जाने के बावजूद कोई जवाब दाखिल नहीं किया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



10. प्रस्तावित सजा के खिलाफ कारण बताओ नोटिस का जवाब दाखिल करने के स्थान पर, याचिकाकर्ता ने दावा याचिका संख्या 378 वर्ष 2000 दायर करके उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण, लखनऊ का दरवाजा खटखटाया और रिट याचिका के प्रस्तर-21 में यह कहा गया है कि उक्त दावा याचिका पर अंततः 17.04.2000 को निर्णय लिया गया था, जिसमें अधिकारियों को कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत करने का उचित अवसर प्रदान करने का निर्देश दिया गया था (न्यायाधिकरण का आदेश नहीं है) अभिलेखों पर लाया गया है। इस प्रकार, ट्रिब्यूनल के आदेश को विभागीय अधिकारियों के ध्यान में लाने से पहले, सजा का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

11. याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने का आक्षेपित आदेश 17.04.2000 को पारित किया गया था, जिसे याचिकाकर्ता को दिया गया था, जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता ने अधीनस्थ रैंक (सजा और अपील) नियम, 1991 (संक्षेप में '1991 नियम') के उत्तर प्रदेश अधीनस्थ पुलिस अधिकारी के नियम 20 के तहत विभागीय अपील को दायर की और इस तरह की अपील को दिनांक 29.09.2000 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसके खिलाफ नियम 23 वर्ष 1991 के नियमों के आधार पर पुनरीक्षण दायर किया गया, जिसका भी, दिनांक 12.03.2004 के आक्षेपित आदेश के तहत वही हथ्र हुआ।

B. वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता

12. गुण-दोष के आधार पर मामले की जांच करने से पहले, राज्य के अधिवक्ता ने वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर रिट याचिका का विरोध किया, जिसमें कहा गया था कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 4(1) के तहत आक्षेपित आदेशों के खिलाफ प्रभावी उपाय उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण के समक्ष है।

13. उक्त आपत्ति के जवाब में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस रिट याचिका पर 15.10.2004 को विचार किया गया था और दलीलें पूरी हो गई हैं, क्योंकि रिट याचिका को वर्ष 21 वर्ष बीत जाने के बाद नहीं फेंका जा सकता है।

14. जहां तक वैकल्पिक उपचार की दलील का संबंध है, इस न्यायालय का दृढ़ विचार है कि 21 वर्षों के बाद वैकल्पिक उपचार के आधार पर एक रिट याचिका को फेंकना, विशेष रूप से जब पक्षकारों ने अपनी दलीलों का आदान-प्रदान किया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के जनादेश को



ध्यान में रखते हुए उचित नहीं है, जैसा कि मेसर्स उत्कल हाईवेज इंजीनियरिंग और ठेकेदार बनाम मुख्य महाप्रबंधक और अन्य एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 14350 वर्ष 2022 के मामले में प्रतिपादित किया गया है। इसलिए, न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर मामले की सुनवाई के लिए आगे बढ़ाया है।

C. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतीकरण

15. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत प्रस्तुतियाँ ठीक इस आशय की हैं कि सजा का आक्षेपित आदेश, अपीलीय आदेश और पुनरीक्षण आदेश पूरी तरह से अवैध, मनमाना और बिना दिमाग के अनुप्रयोग के हैं और तीनों प्राधिकरण अपने सही परिप्रेक्ष्य में उठाए गए भौतिक तथ्यों और आधारों की जांच करने में विफल रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप सेवा से हटाने के आदेश की पुष्टि हुई है।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की आगे की प्रस्तुति यह है कि जांच अधिकारी चिकित्सा प्रमाणपत्रों और बीमारी को प्रमाणित करने वाले डॉक्टरों के बयान पर विचार करने में विफल रहा और इस तरह से की गई जांच गलत है।

17. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने वैकल्पिक रूप से प्रस्तुत किया कि प्रस्तुत मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में हटाने की बड़ी सजा नहीं दी जानी चाहिए थी।

18. आगे प्रस्तुत किया गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी गई सजा जांच अधिकारी की सिफारिश पर आधारित है जिसने सेवा से हटाने के लिए सजा की सिफारिश की है और ऐसी सिफारिश जांच अधिकारी की क्षमता से परे है।

19. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि बहाली की तारीख से लेकर सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ भी प्रतिकूल रिपोर्ट नहीं किया गया था, जैसे कि यदि इस आदेश की जांच सुधारात्मक सिद्धांत की कसौटी पर की जाती है, जो सेवा न्यायशास्त्र पर समान रूप से लागू होती है, तो याचिकाकर्ता भी सजा की मात्रा के लिए इस न्यायालय के सहानुभूतिपूर्ण विचार का पात्र है।

20. अंत में, याचिकाकर्ता ने दृढ़ता से आग्रह किया है कि याचिकाकर्ता को अक्टूबर, 1999 के महीने में अपने कर्तव्यों को संभालने की अनुमति दी गई थी और मार्च, 2000 तक इसी तरह जारी रखा गया था और उक्त अवधि के लिए वेतन का भुगतान किया गया था, इस तरह कोई कारण और विवेक नहीं था कि एक तरफ याचिकाकर्ता के छह महीने के वेतन को रोकने का आदेश

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



क्यों दिया गया है, उक्त अवधि को ड्यूटी से अनुपस्थिति के रूप में मानते हुए और उसी के लिए आचरण उन्हें सेवा से हटा दिया गया है। इस प्रकार, एक ही आरोप के लिए सजा दो गुना दी गई है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 का उल्लंघन होने के कारण दोहरे खतरे के बराबर है। इस प्रकार, दी गई सजा आरोपों की गंभीरता के अनुरूप नहीं है और इस तरह बड़े दंड का निर्णय भी अनुपातहीन है।

D. राज्य प्रतिपक्षियों की ओर से प्रस्तुतीकरण

21. ततस्य विपरीत, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 1991 के नियमों के तहत विचार की गई हर प्रक्रियात्मक कठोरता का पालन किया गया है और याचिकाकर्ता मौखिक जांच के संचालन, सुनवाई का अवसर प्रदान करने आदि सहित की गई जांच के संबंध में किसी भी प्रक्रियात्मक दोष की ओर इशारा करते हुए कोई आधार नहीं उठा सकता है।

22. अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आदतन अनुपस्थिति रिट याचिकाकर्ता का पिछला ट्रैक अभिलेखों है, और उन्होंने खुद को 10 बार अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रखा। वह आगे बताते हैं कि, 1984 में याचिकाकर्ता की कांस्टेबल के रूप में भर्ती होने के बाद से, उन्होंने खुद को 10 मौकों पर अनुपस्थित किया है, यानी कुल 356 दिनों की अवधि के लिए और चार बार चिकित्सा अवकाश लिया, जो कि 1995 तक कुल 97 दिन है। उन्हें 56 दिनों की वेतन कटौती के साथ दंडित किया गया था और 1997-98 में उन्हें क्रमशः 82 और 79 दिनों की अनधिकृत अनुपस्थिति का दोषी पाया गया था और उन्हें 8 अन्य मामूली दंडों के साथ निंदा प्रविष्टि के साथ दंडित किया गया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में कोई उदारता की आवश्यकता नहीं है।

23. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि याचिकाकर्ता ने सामान्य डायरी (जी.डी.) संख्या 21 के अनुसार दिनांक 16.06.1999 को सायं 17:00 बजे अपने कर्तव्यों पर उपस्थिति दर्ज की थी तथा तदनुसार उसे कम्पनी मुख्यालय, गोंडा में कार्यग्रहण हेतु कार्यमुक्त कर दिया गया था। तथापि, गोंडा जाने के स्थान पर वह पुनः अपने घर चला गया और अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा। दिनांक 16.06.1999 की जी.डी. संख्या 21 की प्रति प्रति-शपथपत्र के परिशिष्ट सी.ए.-3 के रूप में संलग्न है। इसके उपरान्त याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.10.1999 को पुनः अपने कर्तव्यों पर उपस्थिति दर्ज की।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



24. यह आगे प्रस्तुत किया जाता है, जब प्रारंभिक जांच दिनांक 21.11.1999 के आदेश के माध्यम से निर्देशित किया गया था, तो याचिकाकर्ता ने चिकित्सा प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए थे, जिसके संबंध में न केवल जांच रिपोर्ट में बल्कि यहां पहले भी विस्तृत चर्चा की गई है।

25. राज्य के अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान अनुलग्नक संख्या सी.ए.1 और सी.ए.-2 की ओर आकर्षित किया, जो कि 5 दिनों के लिए छुट्टी के विस्तार के लिए दिनांक 14.05.1999 का आवेदन है और उक्त आवेदन में उल्लिखित कारणों में कहा गया है कि याचिकाकर्ता का घर जर्जर स्थिति में तूफान में ढह गया और उक्त आवेदन में, 'बीमारी' की कोई दलील का उल्लेख नहीं किया गया है, जो कि अधिक समय से अधिक रहने/अनुपस्थिति को उचित ठहराने का पहला अवसर है, इसलिए बीमारी की दलील मुर्गा और बैल की कहानी है जिसे बाद में पकाया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया चिकित्सा प्रमाण पत्र कथित तौर पर 10.06.1999 को जारी किया गया था, जिसमें अनुलग्नक सी.ए.-5 के रूप में निहित था, यह दर्शाता है कि डॉक्टरों ने प्रमाणित किया है कि याचिकाकर्ता 12.05.1999 से 10.06.1999 तक बीमार (टाइफाइड बुखार से पीड़ित) था। उक्त प्रमाण पत्र पूर्वदृष्टया गलत प्रतीत होता है क्योंकि दिनांक 14.05.1999 (अनुलग्नक सी.ए.-2) के आवेदन में याचिकाकर्ता ने यह उल्लेख नहीं किया है कि वह बीमार था, जिसका अर्थ है कि याचिकाकर्ता द्वारा बाद के किसी समय बीमारी का लंगड़ा बहाना खोजा गया है। दूसरे, विभिन्न चिकित्सा अधिकारियों, यानी डॉ. फिरोज आलम द्वारा जारी जवाबी हलफनामे के लिए अनुलग्नक सी.ए. 6 के रूप में निहित चिकित्सा प्रमाण पत्र। अंसारी और डॉ. पारस नाथ राय ने प्रदर्शित किया कि उन्होंने 11.06.1999 से 27.07.1999 तक याचिकाकर्ता की बीमारी को प्रमाणित किया है और 27.07.1999 को कर्तव्यों को फिर से शुरू करने के लिए फिटनेस प्रमाण पत्र जारी किया है। बीमारी की अवधि का संबंध है, ये प्रमाण पत्र अब तक जारी हैं। याचिकाकर्ता को 15.05.1999 से 20.10.1999 तक अधिक रहने/अनधिकृत अनुपस्थिति के बारे में स्पष्टीकरण देना था और याचिकाकर्ता ने वर्ष 27.07.1999 की अवधि के बाद कोई चिकित्सा प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। ऐसी पृष्ठभूमि में जांच अधिकारी द्वारा चिकित्सा प्रमाणपत्रों को सही ढंग से खारिज कर दिया गया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के प्रयोग में, यह न्यायालय ऐसे प्रमाणपत्रों की शुद्धता पर विचार नहीं कर सकता है, जो जांच अधिकारी के विश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं।



26. स्थायी अधिवक्ता ने जांच रिपोर्ट में निहित निष्कर्षों की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें जांच अधिकारी ने स्पष्ट रूप से पाया था कि बीमारी और घर के ढहने की दलील एक-दूसरे के विपरीत है, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर बचाव साक्ष्यों/आवेदनों से स्पष्ट है।

27. जांच अधिकारी ने यह नहीं पाया कि याचिकाकर्ता को एक दिन के लिए भी अस्पताल में भर्ती कराया गया था। जांच अधिकारी ने विनियम 381 और 382 पर भी ध्यान दिया था, जिसके लिए आवश्यक है कि अधिकारी और कांस्टेबल, जो छुट्टी के दौरान बीमार पड़ गए थे, उन्हें पुलिस अधीक्षक को लिखित रूप में सूचित करना होगा, लेकिन विनियम 381 और 382 का ऐसा कोई अनुपालन नहीं किया गया है, जिसे वास्तविक बीमारी के उद्देश्य से शामिल किया गया है।

28. राज्य के अधिवक्ता ने अंत में बीमारी को प्रमाणित करने वाले डॉक्टरों के मौखिक बयानों और ग्राम प्रधान के बयानों की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया, जिन्होंने घर के ढहने और पुनर्निर्माण के संबंध में गवाही दी थी, लेकिन जांच रिपोर्ट में दर्ज विस्तृत कारणों के लिए विवेचना के दौरान इन गवाहों के बयानों का पक्ष नहीं लिया गया और यह न्यायालय उनके बयानों की सत्यता पर विचार नहीं करेगा क्योंकि यह न्यायालय नहीं कर सकता पहले से ही आयोजित अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करना, एक सीमित हस्तक्षेप को छोड़कर, जो न्यायिक समीक्षा के चार कोनों के भीतर अनुमेय है, जो प्रक्रियात्मक चूक के संबंध में है, लेकिन जांच अधिकारी द्वारा बचाव साक्ष्य की मूल्यांकन इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर विकृत प्रतीत नहीं होती है।

E. प्रासंगिक नियम

29. उन प्रासंगिक नियमों की झलक देखना उपयुक्त है जिनके तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई है अर्थात् अधीनस्थ रैंक (दंड और अपील) नियम, 1991 के उत्तर प्रदेश पुलिस अधिकारी:-

"4. दण्ड:- (1) अच्छे और पर्याप्त कारणों से और इसके बाद उपबंधित के रूप में, निम्नलिखित दंड किसी पुलिस अधिकारी पर लगाया जा सकेगा, अर्थात्

क) प्रमुख दंड-

(i) सेवा से बर्खास्तगी।

(ii) सेवा से हटाना।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



(iii) समय-पैमाने में निचले स्तर या निचले स्तर तक की कमी सहित रैंक में कमी।

(ख) मामूली दंड -

(i) पदोन्नति को रोकना।

(ii) जुर्माना एक महीने के वेतन से अधिक नहीं।

(iii) दक्षता बार पर ठहराव सहित वेतन वृद्धि को रोकना।

(iv) निंदा।

नियम 1991 के नियम 5 के उप नियम (1) में निम्नानुसार प्रावधान है: -

5. दंड देने की प्रक्रिया - (1) जिन मामलों में नियम 4 के उपनियम (1) के खंड (क) में परिगणित प्रमुख दण्डें दी जा सकेंगी, उन मामलों पर नियम 14 के उपनियम (1) में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार निपटाया जाएगा।

नियम 1991 के नियम 14 के उप-नियम (1) में निम्नानुसार प्रतिपादित किया गया है: -

14. विभागीय कार्यवाही करने की प्रक्रिया - (1) इन नियमों में अंतवष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध नियम 5 के उपनियम (1) में निर्दिष्ट मामले में विभागीय कार्यवाहियां, परिशिष्ट-1 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संचालित की जा सकती हैं। नियम 1991 के परिशिष्ट-1 में निम्नानुसार प्रावधान है: -

"पुलिस अधिकारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही के संचालन से संबंधित प्रक्रिया

[नियम 14(1) देखें]

औपचारिक जांच शुरू होने पर, ऐसे पुलिस अधिकारी, जिनके खिलाफ जांच शुरू की गई है, को उन आधारों के बारे में लिखित रूप में सूचित किया जाएगा जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है और उन्हें अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाएगा। जिन आधारों पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, उनका उपयोग इन नियमों के साथ संलग्न फॉर्म-1 के रूप में एक निश्चित शुल्क या शुल्क के रूप में किया जाएगा, जिसे आरोपित पुलिस अधिकारी को सूचित किया जाएगा और जो



इतना स्पष्ट और सटीक होगा कि आरोपित पुलिस अधिकारी को उसके खिलाफ तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में पर्याप्त संकेत दे सके। उसे एक उचित समय के भीतर, अपने बचाव के लिखित बयान में डालने और यह बताने की आवश्यकता होगी कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुनवाई करना चाहता है। यदि वह ऐसा चाहता है, या यदि जांच अधिकारी ऐसा निर्देश देता है, तो ऐसे आरोपों के संबंध में मौखिक जांच की जाएगी जो स्वीकार नहीं किए गए हैं। उस जांच में ऐसे मौखिक साक्ष्य दर्ज किए जाएंगे जो जांच अधिकारी आवश्यक समझे। आरोपित पुलिस अधिकारी गवाहों से जिरह करने, व्यक्तिगत रूप से गवाही देने और ऐसे गवाहों को बुलाने का हकदार होगा जैसा वह चाहता है:

बशर्ते कि जांच अधिकारी, लिखित रूप में दर्ज किए जाने के पर्याप्त कारणों से, गवाह को बुलाने से इनकार कर सकता है। कार्यवाही में साक्ष्य और निष्कर्षों के बयान और उसके आधार का पर्याप्त अभिलेखों होगा। जांच अधिकारी इन कार्यवाहियों से अलग से आरोपित पुलिस अधिकारी को दी जाने वाली सजा के संबंध में अपनी सिफारिश भी कर सकता है।

नियम 1991 के नियम 5 के उप नियम (2) में निम्नानुसार प्रावधान है: -

(2) जिन मामलों में नियम 4 के उपनियम (1) के खंड (बी) में परिगणित मामूली दंड दिए जा सकते हैं, उन्हें नियम 14 के उप-नियम (2) में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार निपटाया जाएगा। नियम 1991 के नियम 14 के उप-नियम (2) में निम्नानुसार प्रतिपादित किया गया है: - (2) उप-नियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, नियम 5 के उप-नियम (2) में निर्दिष्ट मामलों में दंड पुलिस अधिकारी को उसके विरुद्ध की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई और उस कार्य या चूक के आरोपों के बारे में लिखित रूप में सूचित करने के बाद लगाया जा सकता है जिस पर यह किया जाना प्रस्तावित है और उसे ऐसा अभ्यावेदन करने का उचित अवसर दिया जा सकता है जैसा कि वह प्रस्ताव के खिलाफ बनाना चाहता है।

30. यह एक अजीबोगरीब मामला है जहां इस न्यायालय द्वारा दिनांक 15.10.2024 के आदेश के माध्यम से हटाने के आदेश पर रोक लगा दी गई थी, जिसे निम्नानुसार कहा गया है: -



'स्थायी अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए चार सप्ताह का समय दिया और उन्हें चार सप्ताह का समय दिया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता को जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया जाता है।

इस मामले को दो महीने बाद सूचीबद्ध करें।

इस न्यायालय के अगले आदेश तक, रिट याचिका के दिनांक 17.04.2000 अनुलग्नक -1 के आक्षेपित आदेश के संचालन पर रोक रहेगी।

31. दिनांक 15.10.2024 के अंतरिम आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता को 19.11.2005 से सेवा में बहाल किया गया था और 31.07.2024 को सेवानिवृत्ति तक अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया गया था और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, याचिकाकर्ता को वर्ष 2016 में हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नत किया गया था, और अनंतिम पेंशन भी प्राप्त की गई थी, इसलिए, हटाने के आदेश के बाद बाद के घटनाक्रमों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेशों की वैधता और इसके प्रभावों की जांच की जानी चाहिए पारित किया गया था।

F. विश्लेषण और तर्क

32. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी इस दलील को पुष्ट करने के लिए कि यू.पी. पुलिस विनियमों के विनियम 381 और 382 अनिवार्य नहीं हैं, ने इस न्यायालय के दिनांक 30.01.2019 के समन्वय पीठ के फैसले पर अवलंबन किया है, जिसे रिट ए संख्या 16983 वर्ष 2001 में विद्या राम बनाम पुलिस उप महानिरीक्षक, आगरा और अन्य के रूप में प्रस्तुत किया गया था और इस न्यायालय के निर्णय दिनांक 30.01.2019 को रिट ए संख्या 16983 वर्ष 2001 में दिया गया था जिसका शीर्षक विद्या राम बनाम था पुलिस उप महानिरीक्षक, आगरा और अन्य और रिट-ए संख्या 17878 वर्ष 2013 'मनिंदर कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य' में इस न्यायालय के समन्वय पीठ के फैसले का समन्वय किया गया था, जिसमें विद्या राम (उपरोक्त) के फैसले पर ध्यान दिया गया था। विद्या राम (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने प्रस्तर-6 और 7 में कहा है:

"6. यशवंत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2012 (3) एडीजे 108 में इस न्यायालय को उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के पैरा-382 के प्रावधानों से निपटने का अवसर मिला था। इस न्यायालय ने पुलिस विनियमों के प्रस्तर-381 और 382 को



पढ़ने पर कहा है कि प्रतिपक्षियों द्वारा चिकित्सा प्रमाण पत्र की वास्तविकता के खिलाफ एक अनुमान लगाने की मांग की जाती है जब तक कि यह जिला सरकारी अस्पताल से प्राप्त न किया जाए। निर्णय का प्रस्तर-16 से 19 वर्तमान उद्देश्यों के लिए उपयुक्त है और इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"16. इस प्रकार, जांच अधिकारी के निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि इयूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा अपनी बीमारी के संबंध में प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाण पत्र पर जांच अधिकारी द्वारा न तो संदेह किया गया था और न ही विवाद किया गया था, फिर भी जांच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को अपने कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही का दोषी ठहराया है, केवल इस तथ्य के कारण कि इयूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति पर उसने ऐसा नहीं किया उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-381 और 382 में निहित प्रावधानों का पालन करें, जो निम्नानुसार हैं: -

"381. चिकित्सा अवकाश या चिकित्सा प्रमाण पत्र पर छुट्टी के विस्तार के लिए सभी आवेदकों के लिए यह आवश्यक है कि वे पुलिस अधीक्षक को चिकित्सा प्रमाण पत्र के लिए आवेदन करने के अपने इरादे के बारे में लिखित रूप में अवगत कराएं। ऐसा करने में किसी भी विफलता के परिणामस्वरूप यह निर्णय लिया जा सकता है कि चिकित्सा प्रमाणपत्र गलत बयानी द्वारा प्राप्त किया गया है और इस तरह गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

382. अवर अधिकारी और कांस्टेबल जो इयूटी पर रहते समय बीमार पड़ जाते हैं या जो इयूटी पर लौटने के कारण बीमार हो जाते हैं, उन्हें जिला पुलिस अस्पताल में भर्ती होने या निकटतम डिस्पेंसरी में इलाज के लिए आवेदन करना चाहिए, यदि पुलिस अस्पताल आसान पहुंच से बाहर है। उनके प्रवेश या उपचार के तथ्य की सूचना स्थानीय पुलिस अधीक्षक को दी जानी चाहिए, जो जब तक कि वे अपने स्वयं के अधीनस्थ न हों, पुलिस अधीक्षक को इस तथ्य को सूचित करने के लिए तत्काल कदम उठाएंगे, जिनके अधीनस्थ वे हैं। उच्च रैंक के अधिकारियों को पुलिस अस्पतालों में प्रवेश के लिए आवेदन करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है, लेकिन उन्हें जिम्मेदारी से मुक्त



नहीं किया जाता है, जबकि वे पुलिस अधीक्षक को चिकित्सा प्रमाण पत्र प्राप्त करने के अपने इरादे की सूचना देते हैं, जैसा कि ऊपर निर्धारित किया गया है।

17. उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के प्रस्तर-381 के एक सादे पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि कोई भी पुलिस कर्मी, जो चिकित्सा प्रमाण पत्र पर चिकित्सा अवकाश लेना चाहता है, उसे पुलिस अधीक्षक को चिकित्सा प्रमाण पत्र के लिए आवेदन करने के अपने इरादे के बारे में लिखित रूप में सूचित करना चाहिए और ऐसा करने में किसी भी विफलता के गंभीर परिणाम होते हैं और यह अनुमान लगाया जाता है कि ऐसे पुलिस कर्मियों द्वारा प्राप्त चिकित्सा प्रमाण पत्र गलत बयानी पर आधारित हैं और आगे प्रस्तर-382 (ख) उक्त विनियमों में यह प्रावधान किया गया है कि यदि जिला अस्पताल आसान पहुंच से बाहर है तो ड्यूटी के दौरान बीमार पड़ने वाले अवर अधिकारियों और कांस्टेबलों को जिला अस्पताल में भर्ती होने अथवा निकटतम औषधालय में उपचार के लिए आवेदन करना होगा। उनके प्रवेश या उपचार के तथ्य की सूचना स्थानीय पुलिस अधीक्षक को दी जानी चाहिए, जो जब तक कि वे अपने स्वयं के अधीनस्थ नहीं हैं, पुलिस अधीक्षक को इस तथ्य से अवगत कराने के लिए कदम उठाएगा, जिनके अधीनस्थ वे हैं। उच्च रैंक के अधिकारियों को पुलिस अस्पताल में ऐसे प्रवेश के लिए आवेदन करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है, लेकिन उन्हें विनियमों के प्रस्तर-381 के तहत निर्धारित पुलिस अधीक्षक को चिकित्सा प्रमाण पत्र प्राप्त करने के अपने इरादे की सूचना देने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जाता है। ये पुलिस विनियम उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों में संकलित प्रशासनिक निर्देश हैं। उनके पास कोई वैधानिक बल नहीं है। अधीनस्थ पुलिस अधिकारियों द्वारा उपर्युक्त विनियमों का अनुपालन/अनुपालन न करने के गंभीर परिणाम होते हैं, जिसके गंभीर परिणाम होते हैं क्योंकि चिकित्सा अवकाश प्रदान करने के लिए चिकित्सा प्रमाण-पत्र प्राप्त करने में उनके द्वारा गलत बयानी की आशंका पैदा होती है, ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस विनियमों के विनियम 381 में उपबंधों को मानते हुए ऐसा अनुमान लगाया गया है।

18. एक कानूनी कल्पना वह है जो एक वास्तविक वास्तविकता नहीं है, लेकिन जिसे कानून के लिए न्यायालय को इसे वास्तविकता के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता होती है, इसलिए, कानूनी कल्पना के मामले में, न्यायालय का मानना है कि कुछ ऐसा



अस्तित्व है जो वास्तव में मौजूद नहीं है। यह और कुछ नहीं बल्कि एक ऐसी स्थिति के अस्तित्व की धारणा है, जो वास्तविक वास्तविकता में अस्तित्वहीन है। इस संबंध में, पृष्ठ 307 और 308 पर विधान और व्याख्या के चतुर्थ संस्करण (स्वर्गीय जगदीश स्वरूप द्वारा) के कुछ अंशों में निहित कानून के कथनों का उल्लेख करना उपयोगी होगा:

"एक कानूनी कल्पना वह है जो एक वास्तविक वास्तविकता नहीं है, लेकिन कानून के लिए न्यायालय को इसे वास्तविकता के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता होती है। इसलिए, कानूनी कल्पना के मामले में, न्यायालय का मानना है कि कुछ ऐसा अस्तित्व है, जो वास्तव में मौजूद नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह और कुछ नहीं बल्कि एक ऐसी स्थिति के अस्तित्व की धारणा है जो वास्तविक वास्तविकता में अस्तित्वहीन है। जब इस संदर्भ से देखा जाता है तो कानूनी कल्पना और अनुमान के बीच बहुत अंतर नहीं होता है। हालांकि, यह नहीं कहा जा सकता है कि कानूनी कल्पना और एक अनुमान सभी मामलों में पूरी तरह से समान हैं। एक अनुमान निर्णायक हो सकता है या यह खंडन योग्य हो सकता है। एक अनुमान एक कानूनी कल्पना को जन्म देता है। यह निर्णायक है, अगर इसे अस्वीकार करने के लिए किसी सबूत को पेश करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक अनुमान के मामले में जो खंडन योग्य है, जब तक कि तत्सम विपरीत स्थापित नहीं किया जाता है, तब तक काल्पनिक स्थिति को अस्तित्व में माना जाता है जैसे कि यह एक वास्तविक वास्तविकता है।

एक डीमिंग प्रावधान एक कानूनी कल्पना बनाता है। इस तरह की कानूनी कल्पना का प्रभाव यह है कि एक स्थिति जो अन्यथा प्राप्त नहीं होगी, उसे कुछ परिस्थितियों में प्राप्त करने के लिए माना जाता है।

एक डीमिंग फिक्शन को निर्माण द्वारा पेश नहीं किया जा सकता है और किसी दिए गए मामले में एक डीमिंग फिक्शन को लागू करना विधायिका का विशेष विशेषाधिकार है।

19. इस प्रकार कानून के पूर्वोक्त कथनों से, यह स्पष्ट है कि इस तरह के डीमिंग प्रावधान कानून के माध्यम से कानूनी कल्पना बनाता है। डीमिंग प्रावधान के माध्यम से एक कानूनी कल्पना को व्याख्या द्वारा पेश नहीं किया जा सकता है और किसी



दिए गए मामले में एक डीमिंग फिक्शन को लागू करना विधायिका का अनन्य विशेषाधिकार है, इसलिए, मेरे विचार में, इस तरह के डीमिंग प्रावधान को प्रशासनिक निर्देशों के माध्यम से नहीं बनाया जा सकता है। उपरोक्त दृष्टिकोण को सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों से भी समर्थन मिलता है, जिसमें **वी.सी., बनारस हिंदू विश्वविद्यालय बनाम श्रीकांत, 2006 (11) एस.सी.सी. 42: ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2304: 2006 (4) एएलजे 578** में दिए गए निर्णय शामिल हैं, जिसमें यह माना गया है कि प्रशासनिक आदेश द्वारा कानून में कोई कानूनी कल्पना नहीं बनाई जा सकती है। इस प्रकार पुलिस विनियमन के विनियम 381 द्वारा उठाई गई उपरोक्त धारणा कानून के तहत प्राधिकार के दायरे से बाहर है, क्योंकि इसे बनाए नहीं रखा जा सकता है, इसलिए, उक्त विनियमन द्वारा उठाई गई उपरोक्त धारणा को नजरअंदाज किया जा सकता है और मेरी राय में, इसका पर्याप्त अनुपालन पर्याप्त होगा।

7. मैं इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हूँ कि अनुमान केवल एक विधायी प्रावधान के आधार पर तैयार किया जा सकता है और अधिकारियों को इस तरह की धारणा बनाने के लिए प्रशासनिक परिपत्र पर भरोसा करना उचित नहीं होगा।

33. इसके अलावा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए **कृष्ण कांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य, (2012) 3 एस.सी.सी. 178** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया, यह तर्क देने के लिए कि 'एक कारण के लिए अनुपस्थिति', को जानबूझकर अनुपस्थिति नहीं कहा जा सकता है।

34. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम थी जिसके तहत रिपोर्ट करना या कर्तव्य का पालन करना संभव नहीं था और इस प्रकार उनकी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता था। यह तर्क दिया जाता है कि याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति जानबूझकर नहीं थी और उसे उसकी स्वास्थ्य स्थिति के कारण रोका गया था, और इसलिए उसका मामला स्पष्ट रूप से कृष्ण कांत बी परमार (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए अपवाद के तहत आच्छादित किया गया है।

35. कृष्ण कांत बी परमार (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"16. अपीलकर्ता के मामले में अनधिकृत अनुपस्थिति का उल्लेख करते हुए अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप लगाया कि वह कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफल रहा और उसका व्यवहार एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय था। यह सवाल कि क्या "कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति" कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या किसी सरकारी कर्मचारी के अनुचित व्यवहार के रूप में है, इस सवाल पर निर्णय किए बिना तय नहीं किया जा सकता है कि क्या अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है या बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण।

17. यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है जिसके तहत रिपोर्ट करना या कर्तव्य करना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है। किसी भी आवेदन या पूर्व अनुमति के बिना ड्यूटी से अनुपस्थिति अनधिकृत अनुपस्थिति हो सकती है, लेकिन इसका मतलब हमेशा जानबूझकर नहीं होता है। ऐसी अलग-अलग घटनाएं हो सकती हैं जिनके कारण एक कर्मचारी ड्यूटी से दूर रह सकता है, जिसमें उसके नियंत्रण से परे बाध्यकारी परिस्थितियां जैसे बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होना आदि शामिल हैं, लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

18. एक विभागीय कार्यवाही में, यदि कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में, अनुपस्थिति कदाचार के बराबर नहीं होगी।

36. कृष्णकांत बी परमार (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह प्रश्न कि क्या कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या किसी सरकारी कर्मचारी के अनुचित व्यवहार के बराबर है, इस प्रश्न पर निर्णय किए बिना निर्णय नहीं किया जा सकता है कि क्या अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है या बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण। यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है, जिसके तहत रिपोर्ट करना या कर्तव्य करना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है। किसी भी आवेदन या पूर्व अनुमति के बिना ड्यूटी से अनुपस्थिति अनधिकृत अनुपस्थिति हो सकती है, लेकिन इसका



मतलब हमेशा जानबूझकर नहीं होता है। उसके नियंत्रण से परे बाध्यकारी परिस्थितियां हो सकती हैं जैसे बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होना, आदि, और ऐसे मामलों में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। यदि कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में, अनुपस्थिति कदाचार के बराबर नहीं होगी।

37. चेन्नई मेट्रोपॉलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवेरेज बोर्ड बनाम टीटी मुरली बाबू, (2014)4 एस.सी.सी. 108 में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कृष्ण कांत बी परमार (उपरोक्त) की व्याख्या की है और निम्नानुसार कहा है:

"19. जगदीश सिंह (उपरोक्त) में न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अपीलकर्ता एक स्वीपर था और दो महीनों में कुल मिलाकर पंद्रह दिनों तक चार मंत्रों पर अनुपस्थित रहा था। उस संदर्भ में, न्यायालय ने इस प्रकार कहा: -

"प्रस्तुत मामला आदतन अनुपस्थिति का मामला नहीं है। ऐसा लगता है कि अपीलकर्ता का उस तारीख से अच्छा ट्रैक अभिलेखों है जब वह स्वीपर के रूप में सेवा में शामिल हुआ था। सेवा के अपने लंबे करियर में, वह फरवरी और मार्च 2004 के महीनों में चार मौकों पर पंद्रह दिनों के लिए अनुपस्थित रहे। यह मुख्य रूप से अपनी बेटी की ससुराल वालों की समस्या को हल करने के लिए था। संतानोचित बंधन और भावनात्मक लगाव नियोक्ता से छुट्टी लेने और प्राप्त करने के लिए उसके रास्ते में आ सकता है। हमारे विचार में, जिस कदाचार का आरोप लगाया गया है, वह निश्चित रूप से अनुशासन का उल्लंघन होगा जो एक कर्मचारी से प्रतिष्ठान में बनाए रखने की अपेक्षा की जाती है, लेकिन अनुशासन के घोर उल्लंघन की श्रेणी में फिट नहीं हो सकता है। हम यह जोड़ने में जल्दबाजी करते हैं, अगर यह आदतन अनुपस्थिति होती, तो हम इस अपील पर विचार करने का साहस नहीं करते।

20. यदि दोनों निर्णयों को उचित रूप से समझा जाता है, तो दो पहलू स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। श्री भगवान लाल आर्य (उपरोक्त) में, न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया, अर्थात्, एक सरकारी चिकित्सक से उचित चिकित्सा प्रमाण पत्र प्रस्तुत



करना और कदाचार की प्रकृति और जगदीश सिंह (उपरोक्त) में अनुपस्थिति की अवधि, कर्मचारी की स्थिति और उसके ट्रैक अभिलेखों और उसके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के बारे में राय दी। मामले में, तथ्यात्मक स्कोर अलग है, जिसके लिए हम बाद में विज्ञापन देंगे, उपरोक्त अधिकारी वास्तव में प्रतिपक्षी की सहायता नहीं करते हैं।

21. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता ने कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य[10] में निर्णय की मूल्यांकन की है। इस बात पर प्रकाश डालने के लिए कि जांच अधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष या अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा यह निर्णय लेने के अभाव में कि अनधिकृत अनुपस्थिति जानबूझकर की गई थी, आरोप को साबित नहीं माना जा सकता है। उक्त सबमिशन की मूल्यांकन करने के लिए हमने उक्त प्राधिकरण का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है। उक्त मामले में, सवाल उठा कि क्या "कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति" "कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता" या "एक सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार" के समान थी, क्योंकि अपीलकर्ता पर कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफलता के लिए आरोप पत्र दाखिल किया गया था और उसका व्यवहार एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय था। नियम की स्थिति का विज्ञापन करने के बाद दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार व्यक्त किया: -

"16. अपीलकर्ता के मामले में अनधिकृत अनुपस्थिति का जिक्र करते हुए अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप लगाया कि वह कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफल रहा और उसका व्यवहार एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय था। यह सवाल कि क्या "कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति" कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय व्यवहार है, इस सवाल को तय किए बिना तय नहीं किया जा सकता है कि क्या अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है या बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण।

17. यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है जिसके तहत रिपोर्ट करना या कर्तव्य करना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है। बिना किसी आवेदन या पूर्व अनुमति के ड्यूटी से अनुपस्थिति अनधिकृत अनुपस्थिति हो सकती है, लेकिन इसका मतलब हमेशा जानबूझकर नहीं



होता है। ऐसी अलग-अलग घटनाएं हो सकती हैं जिनके कारण एक कर्मचारी इयूटी से दूर रह सकता है, जिसमें उसके नियंत्रण से परे बाध्यकारी परिस्थितियां जैसे बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होना आदि शामिल हैं, लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

18. एक विभागीय कार्यवाही में, यदि कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में, अनुपस्थिति कदाचार के बराबर नहीं होगी।

22. हमने विस्तार से उद्धृत किया है क्योंकि हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि न्यायालय ने कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या एक सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार के आरोप से निपटने के दौरान, उपरोक्त दृष्टिकोण व्यक्त किया है और आगे न्यायाधीशों ने यह भी राय दी है कि ऐसी बाध्यकारी परिस्थितियां हो सकती हैं जो एक कर्मचारी के नियंत्रण से बाहर हैं। इसके अलावा, उक्त मामले में तथ्य अलग-अलग थे क्योंकि कुछ अवसरों पर अपीलकर्ता को उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने से रोका गया था और अनुपस्थिति रुक-रुक कर थी। इसके अलावा, इसमें यह कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से इस निष्कर्ष पर पहुंचना अनिवार्य है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है। निर्णय की एक उचित समझ पर हमारी राय है कि उक्त मामले में व्यक्त किए गए विचार को उक्त मामले के तथ्यों तक सीमित किया जाना चाहिए, जो नियम की स्थिति के संबंध में था, कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोप की प्रकृति और विवेचना के दौरान अभिलेखों पर आई सामग्री थी। यह कानून में एक पूर्ण प्रस्ताव के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी एक लंबी अनधिकृत अनुपस्थिति होती है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से यह निष्कर्ष दर्ज करना अनिवार्य है कि उक्त अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, भले ही कर्मचारी अनुपस्थित रहने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियों को दिखाने में विफल रहता है।

23. हमने विस्तार से उद्धृत किया है क्योंकि हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि कृष्णकांत बी. परमार मामले में न्यायालय ने कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता या एक सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार के आरोप से निपटने के दौरान, पूर्व में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण को व्यक्त किया है और आगे न्यायाधीशों ने यह भी राय दी है कि ऐसी बाध्यकारी परिस्थितियां हो सकती हैं जो किसी कर्मचारी के नियंत्रण से बाहर हैं। इसके अलावा, उक्त मामले में तथ्य अलग-अलग थे क्योंकि कुछ अवसरों पर अपीलकर्ता को उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने से रोका गया था और अनुपस्थिति रुक-रुक कर थी। इसके अलावा, इसमें यह कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से इस निष्कर्ष पर पहुंचना अनिवार्य है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है। निर्णय कृष्णकांत बी. परमार मामले की उचित समझ पर हमारी राय है कि उक्त मामले में व्यक्त किए गए विचार को उक्त मामले के तथ्यों, कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोप की प्रकृति और विवेचना के दौरान अभिलेखों पर आई सामग्री के संबंध में सीमित होना चाहिए। यह कानून में एक पूर्ण प्रस्ताव के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी कोई लंबी अनधिकृत अनुपस्थिति होती है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से यह निष्कर्ष दर्ज करना अनिवार्य है कि उक्त अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, भले ही कर्मचारी अनुपस्थित रहने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियों को दिखाने में विफल रहता हो।

24. इस संदर्भ में, यह अनधिकृत अनुपस्थिति और इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार से संबंधित कुछ अन्य प्राधिकरणों का उल्लेख करना प्रतीत होता है। **पंजाब राज्य बनाम पीएल सिंगला, (2008) 8 एस.सी.सी. 469** में न्यायालय ने अनधिकृत अनुपस्थिति से निपटने के लिए इस प्रकार कहा है:

"11. अनधिकृत अनुपस्थिति (या छुट्टी से अधिक समय तक रुकना), अनुशासनहीनता का कार्य है। जब भी किसी कर्मचारी द्वारा अनधिकृत अनुपस्थिति होती है, तो नियोक्ता के लिए दो प्रविधि खुले होते हैं। पहला स्पष्टीकरण स्वीकार करके अनधिकृत अनुपस्थिति को माफ करना और अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के लिए छुट्टी मंजूर करना है, जिसमें कदाचार को माफ कर दिया गया था। दूसरा है अनधिकृत



अनुपस्थिति को कदाचार के रूप में मानना, जांच करना और कदाचार के लिए सजा देना।

25. फिर से, दंड की अवधारणा से निपटते हुए न्यायालय ने इस प्रकार फैसला सुनाया:

"14. जहां कर्मचारी जो अनधिकृत रूप से अनुपस्थित है, ड्यूटी पर वापस रिपोर्ट नहीं करता है और कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं देता है, या जहां कर्मचारी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं है, नियोक्ता अनधिकृत अनुपस्थिति के संबंध में अनुशासनात्मक कार्रवाई का सहारा लेगा। इस तरह की अनुशासनात्मक कार्यवाही में बर्खास्तगी या सेवा से हटाने जैसे बड़े दंड से लेकर संचयी प्रभाव के बिना वेतन वृद्धि को रोकने जैसे मामूली दंड तक की सजा हो सकती है। जुर्माने की सीमा सेवा की प्रकृति, कर्मचारी द्वारा धारित स्थिति, अनुपस्थिति की अवधि और अनुपस्थिति के कारण/स्पष्टीकरण पर निर्भर करेगी।

26. तुषार डी. भट्ट बनाम गुजरात राज्य (2009) 11 एस.सी.सी. 678, में अपीलकर्ता छह महीने की अवधि के लिए अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और इसके अलावा धमकी भरे पत्र भी लिखे थे और कदाचार के कुछ अन्य कृत्यों का संचालन भी किया था। आखिरकार, कर्मचारी को बर्खास्तगी के आदेश के साथ दौरा किया गया और उच्च न्यायालय ने उसी पर अनुमोदन की मुहर लगा दी थी। अपीलकर्ता के आचरण पर टिप्पणी करते हुए, न्यायालय ने कहा कि वह छह महीने से अधिक समय तक आधिकारिक कर्तव्य से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने का औचित्य नहीं था, क्योंकि किसी भी संस्था या संगठन के अनुशासन के हित में, कर्मचारी के इस तरह के दृष्टिकोण और रवैये का समर्थन नहीं किया जा सकता है।

27. इस प्रकार, एक कदाचार के रूप में एक कर्मचारी द्वारा अनधिकृत अनुपस्थिति को दंड लगाने के लिए एक कठोर सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। यह कई कारकों पर निर्भर करेगा जैसा कि पीएल सिंगला में निर्धारित किया गया है।

38. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चेन्नई महानगरीय जलापूर्ति एवं सीवरेज बोर्ड (उपर्युक्त) प्रकरण में, कृष्णकांत बी. परमार (उपर्युक्त) के निर्णय का परीक्षण करने के उपरान्त यह प्रतिपादित किया कि कृष्णकांत बी. परमार (उपर्युक्त) में व्यक्त यह दृष्टिकोण कि ऐसी विवशकारी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जो किसी कर्मचारी के नियंत्रण से परे हों तथा यह कि अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए यह निष्कर्ष दर्ज करना

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अनिवार्य है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई थी, उक्त मामले के तथ्यों तक ही सीमित समझा जाना चाहिए। ऐसा निष्कर्ष निकालते समय लागू नियमों की स्थिति, कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की प्रकृति तथा विभागीय जाँच के दौरान अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। यह विधि का कोई निरपेक्ष सिद्धान्त नहीं माना जा सकता कि जब भी कोई कर्मचारी दीर्घ अवधि तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहे, तब प्रत्येक स्थिति में अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए यह अभिलेखित करना अनिवार्य हो कि उक्त अनुपस्थिति जानबूझकर की गई थी, विशेषकर तब जबकि कर्मचारी स्वयं अपनी अनुपस्थिति के समर्थन में ऐसी विवशकारी परिस्थितियों को प्रदर्शित करने में असफल रहा हो, जिनके कारण वह अनुपस्थित रहने के लिए बाध्य हुआ हो।

39. इसके बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पीएल सिंगला (उपरोक्त) में निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें यह माना गया है कि अनधिकृत अनुपस्थिति (या अधिक समय तक रहने की छुट्टी), अनुशासनहीनता का कार्य है और जब भी किसी कर्मचारी द्वारा अनधिकृत अनुपस्थिति होती है, तो नियोक्ता के लिए दो प्रविधि खुले होते हैं। पहला स्पष्टीकरण स्वीकार करके अनधिकृत अनुपस्थिति को माफ करना और अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के लिए छुट्टी मंजूर करना है, जिसमें कदाचार को माफ कर दिया गया था और दूसरा अनधिकृत अनुपस्थिति को कदाचार के रूप में मानना, जांच करना और कदाचार के लिए सजा देना है। जहां कर्मचारी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं है, नियोक्ता अनधिकृत अनुपस्थिति के संबंध में अनुशासनात्मक कार्रवाई का सहारा लेगा। इस तरह की अनुशासनात्मक कार्यवाही में बर्खास्तगी या सेवा से हटाने जैसे बड़े दंड से लेकर संचयी प्रभाव के बिना वेतन वृद्धि को रोकने जैसे मामूली दंड तक की सजा हो सकती है। जुर्माने की सीमा सेवा की प्रकृति, कर्मचारी द्वारा धारित स्थिति, अनुपस्थिति की अवधि और अनुपस्थिति के कारण/स्पष्टीकरण पर निर्भर करेगी।

40. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी कर्मचारी द्वारा अनधिकृत अनुपस्थिति, एक कदाचार के रूप में, सजा लगाने के लिए एक कठोर फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है। यह कई कारकों पर निर्भर करेगा जैसा कि पीएल सिंगला (उपरोक्त) में निर्धारित किया गया है।

41. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्रवाई में न्यायिक समीक्षा के दायरे, सीमा और मापदंड निर्धारित किए हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रेलवे बनाम राजेंद्र कुमार दुबे, (2021) 14 एस.सी.सी. 735** में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



"21.1. हम पहले अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे पर चर्चा करेंगे। यह अच्छी तरह से तय है कि उच्च न्यायालय को अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए, और जांच अधिकारी के समक्ष पेश किए गए सबूतों की फिर से मूल्यांकन करनी चाहिए। हम एक लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच में निष्कर्षों के साथ उच्च न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप के संबंध में इस न्यायालय के कुछ निर्णयों का विज्ञापन करेंगे।

21.2. एपी राज्य बनाम एस. श्री रामा राव, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1723] में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय एक लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के निर्णय पर अपील की न्यायालय नहीं है। यह अपने रिट अधिकार क्षेत्र के तहत उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है कि वह सबूतों की समीक्षा करे और सबूतों पर एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचे। हालांकि, उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय प्राधिकारी जिसने दोषी अधिकारी के खिलाफ कार्यवाही की है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ असंगत है, जहां निष्कर्ष किसी सबूत पर आधारित नहीं हैं, जो यथोचित रूप से इस निष्कर्ष का समर्थन कर सकता है कि दोषी अधिकारी आरोप का दोषी है, या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन कर सकता है, या अधिकारी कुछ बाहरी विचारों से प्रेरित थे और एक निष्पक्ष निर्णय तक पहुंचने में विफल रहे, या खुद को अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होने की अनुमति दी, या जहां इसके चेहरे पर निष्कर्ष इतना पूरी तरह से मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी उचित व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था। यदि, हालांकि, जांच ठीक से की जाती है, तो विभागीय प्राधिकरण तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है, और यदि कुछ कानूनी सबूत हैं जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता एक ऐसा मामला नहीं है जिसे रिट याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष पेश करने की अनुमति दी जा सकती है।

21.3. इन सिद्धांतों को आंध्र प्रदेश बनाम चित्रा वेंकट राव, (1975) 2 एस.सी.सी. 557 में आगे दोहराया गया था। अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण की रिट जारी करने



का अधिकार क्षेत्र एक पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार है। न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में शक्ति का प्रयोग नहीं करती है। साक्ष्य की मूल्यांकन पर एक अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्षों को रिट कार्यवाही में फिर से नहीं खोला जाता है या उन पर सवाल नहीं उठाया जाता है। कानून की एक त्रुटि जो अभिलेखों के चेहरे पर स्पष्ट है, उसे रिट न्यायालय द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन तथ्य की त्रुटि नहीं है, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो। एक रिट जारी की जा सकती है यदि यह दिखाया जाता है कि तथ्य के निष्कर्ष को दर्ज करने में, न्यायाधिकरण ने गलती से स्वीकार्य और भौतिक साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है, या गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य स्वीकार कर लिया है। न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि न्यायाधिकरण के समक्ष पेश किए गए भौतिक साक्ष्य किसी निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए अपर्याप्त या अपर्याप्त हैं। किसी बिंदु पर साक्ष्य की पर्याप्तता या पर्याप्तता, और उक्त निष्कर्ष से निकाले जाने वाले तथ्य का अनुमान न्यायाधिकरण के अनन्य अधिकार क्षेत्र के भीतर है।

21.4. इस न्यायालय के बाद के फैसलों में, जिसमें भारत संघ बनाम जी. गणयुथम , (1997) 7 एस.सी.सी. 463, आरपीएफ बनाम साई बाबू , (2003) 4 एस.सी.सी. 331, चेन्नई मेट्रोपॉलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड बनाम टीटी मुरलीबाबू, (2014) 4 एस.सी.सी. 108, भारत संघ बनाम मानव कुमार गुहा , (2011) 11 एस.सी.सी. 535 शामिल हैं, में इन सिद्धांतों का लगातार पालन किया गया है।

21.5. राजस्थान राज्य बनाम हीम सिंह , (2021) 12 एस.सी.सी. 569 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए एक हालिया फैसले में इस न्यायालय ने कानून को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त किया है:

"37. अनुशासनात्मक मामलों में न्यायिक समीक्षा करने में, स्पेक्ट्रम के दो छोर होते हैं। पहला संयम के नियम का प्रतीक है। दूसरा परिभाषित करता है कि हस्तक्षेप कब अनुमेय है। संयम का नियम न्यायिक समीक्षा के दायरे को सीमित करता है। यह एक वैध कारण के लिए है। कदाचार किया गया है या नहीं, इसका निर्धारण मुख्य रूप से अनुशासनात्मक प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र में है। न्यायाधीश अनुशासनात्मक प्राधिकारी



का कार्यभार नहीं संभालता है। न ही न्यायाधीश किसी नियोक्ता की टोपी पहनता है। अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा तथ्य की खोज का सम्मान इस विचार की मान्यता है कि यह नियोक्ता है जो उनकी सेवा के कुशल संचालन के लिए जिम्मेदार है। अनुशासनात्मक जांच को प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करना होता है। लेकिन वे साक्ष्य के सख्त नियमों द्वारा शासित नहीं होते हैं जो न्यायिक कार्यवाही पर लागू होते हैं। इसलिए सबूत का मानक सख्त मानक नहीं है जो एक आपराधिक मुकदमे को नियंत्रित करता है, उचित संदेह से परे सबूत का, बल्कि संभावनाओं की प्रबलता द्वारा शासित एक नागरिक मानक है। प्रधानता के नियम के भीतर, संदर्भ और विषय के आधार पर अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं। स्पेक्ट्रम का पहला छोर सम्मान और स्वायत्तता पर आधारित है - अनुशासनात्मक प्राधिकरण की स्थिति के लिए एक तथ्य-खोज प्राधिकरण के रूप में सम्मान और सेवा के अनुशासन और दक्षता को बनाए रखने में नियोक्ता की स्वायत्तता। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर यह सिद्धांत है कि न्यायालय के पास हस्तक्षेप करने का अधिकार क्षेत्र है जब जांच में निष्कर्ष बिना किसी सबूत के या जब वे विकृति से पीड़ित होते हैं। महत्वपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने में विफलता एक ऐसी घटना है जिसे कानून तथ्य के विकृत निर्धारण के रूप में मानता है। आनुपातिकता हमारे न्यायशास्त्र की एक मजबूत विशेषता है। सेवा न्यायशास्त्र ने लंबे समय तक न्यायालय के अधिकार को हस्तक्षेप करने की अनुमति देने में इसे मान्यता दी है जब निष्कर्ष या दंड साक्ष्य या कदाचार के वजन से अधिक होता है। न्यायिक शिल्प इन दो तटों के किनारों के बीच एक स्थिर पाल बनाए रखने में निहित है जिन्हें स्पेक्ट्रम के दो छोर कहा गया है। न्यायाधीश न्यायिक समीक्षा करते समय केवल हैंड्स-ऑफ मंत्र के पाठ से आराम नहीं करते हैं। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या अनुशासनात्मक जांच में निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित है, जांच का प्रारंभिक या सीमा स्तर किया जाता है। यह न्यायालय की अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए है कि कदाचार के आरोप का समर्थन करने और विकृति से बचाव के लिए कुछ सबूत हैं। लेकिन यह न्यायालय को अनुशासनात्मक जांच में साक्ष्य निष्कर्षों की फिर से मूल्यांकन करने या उस दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने की अनुमति नहीं देता है जो न्यायाधीश को अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसा करने से पहले सिद्धांत का अपमान होगा जिसे ऊपर उल्लिखित किया गया है। अन्तिम एवं सर्वोपरि मार्गदर्शक तत्व सुदृढ़



सामान्य विवेक का प्रयोग है; इसके अभाव में न्यायाधीश की न्यायिक कला एवं कौशल व्यर्थ हो जाते हैं।

42. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रेलवे बनाम राजेंद्र कुमार दुबे (उपरोक्त) में विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने के बाद सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिन्हें संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

- i. अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण की रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र एक पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार है;
- ii. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय एक लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के फैसले पर अपील की न्यायालय नहीं है;
- iii. यह अपने रिट अधिकार क्षेत्र के तहत उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है कि वह सबूतों की समीक्षा करे, और साक्ष्य पर एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचे;
- iv. उच्च न्यायालय कार्यवाही में हस्तक्षेप कर सकता है:

(क) जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन नहीं किया गया है,

(बी) जहां निष्कर्ष किसी सबूत पर आधारित नहीं हैं, जो अपराध के निष्कर्ष का यथोचित समर्थन कर सकते हैं, या

(ग) जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले सांविधिक नियमों का उल्लंघन है, या

(घ) प्राधिकारियों को कुछ बाहरी विचारों से प्रेरित किया गया था और वे निष्पक्ष निर्णय पर पहुंचने में विफल रहे, या

(ई) खुद को अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होने की अनुमति दी, या

(च) जहां इसके प्रत्यक्ष रूप से निष्कर्ष इतना पूरी तरह से मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी उचित व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है;

v. यदि, जांच ठीक से की जाती है, तो विभागीय प्राधिकरण तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है, और यदि कुछ कानूनी सबूत हैं जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता एक ऐसा मामला नहीं है जिसे

रिट याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष पेश करने की अनुमति दी जा सकती है;

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

vi. साक्ष्य की मूल्यांकन पर एक अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्ष, रिट कार्यवाही में फिर से नहीं खोले जाते हैं या उन पर सवाल नहीं उठाया जाता है; और viii। कानून की एक त्रुटि जो अभिलेखों के चेहरे पर स्पष्ट है, उसे एक रिट न्यायालय द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन तथ्य की त्रुटि नहीं है, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो।

टीटी मुरलीबाबू (उपरोक्त) कृष्णा कांत बी. परमार (उपरोक्त) के फैसले को ध्यान से पढ़ने के साथ-साथ इस मामले में जांच रिपोर्ट में निहित निष्कर्षों को ध्यान से पढ़ने पर, यह पता चलता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टीटी मुरलीबाबू (उपरोक्त) के मामले में कृष्णाकांत बी. परमार के फैसले पर पहले ही ध्यान दिया था और कहा है कि "इसे कानून में एक पूर्ण प्रस्ताव के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी लंबे समय तक अनधिकृत अनुपस्थिति होती है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से यह निष्कर्ष दर्ज करना अनिवार्य है कि उक्त अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, भले ही कर्मचारी अनुपस्थित रहने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियों को दिखाने में विफल रहता है।

43. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क अब तक चिकित्सा प्रमाण पत्र से संबंधित है, जाली या मनगढ़ंत नहीं है और यहां तक कि जांच अधिकारी ने यह नहीं माना कि याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए चिकित्सा प्रमाण पत्र जाली दस्तावेज हैं, इस तरह अनुपस्थिति के कारण को वास्तविक माना जाना चाहिए था और इस तरह की प्रस्तुतियों का समर्थन करने के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **छेल सिंह बनाम एमजीबी ग्रामीण बैंक पाली और अन्य रिपोर्ट (2014)13 एस.सी.सी. 166** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया।

44. यहां तक कि अगर याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए चिकित्सा प्रमाणपत्रों को जांच अधिकारी द्वारा जाली घोषित नहीं किया जाता है, तब भी चिकित्सा प्रमाण पत्र पूरी अवधि के लिए नहीं हैं 160 दिन, जिसके लिए अनधिकृत अनुपस्थिति को माफ करने की मांग की गई है, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा इस तरह के चिकित्सा प्रमाण पत्र शायद ही किसी उपयोग के हों, विशेष रूप से जांच अधिकारी द्वारा दिए गए विश्लेषण और तर्क की पृष्ठभूमि में जो याचिकाकर्ता ने किया था उस तारीख को बीमार नहीं प्रतीत होता है जब सबसे पहले उसने अपनी छुट्टी के विस्तार की मांग की थी क्योंकि छुट्टी आवेदन में एकमात्र आधार का उल्लेख किया गया था कि उसका घर ढह गया था, इसलिए छुट्टी बढ़ाई जा सकती है, इसलिए, बीमारी की पूरी अवधि के लिए



बीमारी की दलील ने जांच अधिकारी के विश्वास को प्रेरित नहीं किया, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के अधिकार क्षेत्र में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। भारत के संविधान के रूप में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय याचिकाकर्ता के मामले में शायद ही कोई सहायता करता है।

45. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के एक समन्वय पीठ के फैसले पर अवलंबन किया, जो रिट-ए संख्या 17878 वर्ष 2013 'मनिंदर कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य' में दिया गया था और उक्त निर्णय के आधार पर प्रस्तुत किया गया है कि अपराधी कर्मचारी द्वारा भरोसा किए गए चिकित्सा प्रमाणपत्रों को केवल इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि इस तरह के प्रमाण पत्र जारी करने वाला चिकित्सक याचिकाकर्ता की तैनाती के स्थान से दूर स्थान पर तैनात था लेकिन रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा प्रमाणपत्रों को खारिज करने के लिए जांच रिपोर्ट में उल्लिखित ऐसे कारण/विश्लेषण नहीं हैं, इसलिए, कानून का उक्त प्राधिकरण याचिकाकर्ता के मामले के लिए कोई मदद नहीं करता है।

46. पुलिस विनियमों में निहित विनियम 381, भले ही उसे अनिवार्य नहीं माना जाता है और कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत करते समय उस संबंध में स्पष्टीकरण दिया जा सकता है, फिर भी वह निर्देशिका है और ऐसे विनियमों का पालन करने की आवश्यकता है। यहां तक कि अगर विनियमन 381 और 382 को बहुत अधिक विश्वसनीयता नहीं दी जाती है क्योंकि चिकित्सा प्रमाण पत्र दाखिल करते समय और छुट्टी मांगते समय बीमारी के बारे में जानकारी प्रस्तुत नहीं करने की व्याख्या की जा सकती है, फिर भी इस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में जांच अधिकारी ने पाया था कि 27.07.1999 को फिटनेस प्रमाण पत्र होने के बाद भी, याचिकाकर्ता ने 20.10.1999 तक कर्तव्यों पर रिपोर्ट नहीं किया था जो याचिकाकर्ता की ओर से अनुशासनहीनता को दर्शाता है।

47. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पंजाब राज्य बनाम पीएल सिंगला ए.आई.आर. 2009 एस.सी.सी. 1149** के मामले में माना है कि दंड की सीमा सेवा की प्रकृति, कर्मचारी द्वारा धारित स्थिति, अनुपस्थिति की अवधि और अनुपस्थिति के कारण/स्पष्टीकरण पर निर्भर करेगी।

48. यह अब और अधिक नहीं है कि जहां सजा या तो बर्खास्तगी या निष्कासन है, अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि से संबंधित किसी भी परिणामी आदेश को पारित करना आवश्यक नहीं हो सकता है (जब तक कि नियमों को अन्यथा की आवश्यकता न हो)। जहां अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए दी गई सजा के परिणामस्वरूप रोजगार नहीं टूटता है और कर्मचारी सेवा में जारी रहता

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



है, वहां कुछ परिणामी आदेश पारित करना आवश्यक होगा कि अनुपस्थिति की अवधि को सेवा अभिलेखों में कैसे ध्यान में रखा जाना चाहिए और निपटाया जाना चाहिए। यदि अनधिकृत अनुपस्थिति बेहिसाब रहती है, तो इसके परिणामस्वरूप सेवा में ब्रेक होगा, जिससे कर्मचारी की वरिष्ठता, पेंशन, वेतन आदि प्रभावित होंगे। अनुपस्थिति की अवधि का हिसाब कैसे लगाया जाना चाहिए, यह निर्देशित करने वाला कोई भी परिणामी आदेश एक लेखांकन और प्रशासनिक प्रक्रिया के लिए है, जो सजा लगाने के आदेश को प्रभावित या अधिक्रमित नहीं करता है।

49. पीएल सिंगला (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, चूंकि सजा में से एक सेवा से हटाना है और यदि वह बनी रहती है, तो अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि से संबंधित अलग आदेश पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जो कि दिनांक 17.04.2000 को इस रिट याचिका के अनुलग्नक 2 के रूप में निहित है क्योंकि सेवा से हटाने से निश्चित रूप से रोजगार का विच्छेद होगा, इस प्रकार याचिकाकर्ता का वेतन जब्त करने का दिनांक 17.04.2000 का आदेश पूरी तरह से अनावश्यक था और यह केवल तभी होता है जब निष्कासन या बर्खास्तगी के अलावा कोई अन्य सजा पारित की जाती है तो अनुपस्थिति की अवधि का हिसाब लगाया जाना चाहिए और उससे निपटा जाना चाहिए।

50. वर्तमान प्रकरण में, चूंकि सेवा से पृथक्करण (हटाए जाने) का आदेश पारित कर दिया गया था, अतः अनुपस्थिति की अवधि को 'डाइस नॉन' मानते हुए वेतन की जब्ती का पृथक आदेश पारित करना कठोर अर्थों में आवश्यक नहीं था। तथापि, यदि याचिकाकर्ता द्वारा दीर्घकालीन सेवा प्रदान किए जाने के तथ्य को सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से देखते हुए सेवा से पृथक्करण के आदेश में हस्तक्षेप किया जाता है, तो वेतन जब्ती के आदेश को यथावत् बनाए रखना अथवा उस संबंध में नया आदेश पारित करना न्यायोचित एवं उचित होगा।

51. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने सेवा से हटाने के आक्षेपित आदेशों की वैधता पर हमला करते हुए जोर देकर कहा था कि याचिकाकर्ता के पिछले आचरण पर बड़ा जुर्माना देने के लिए विचार किया गया था, लेकिन न तो आरोप पत्र में और न ही कारण बताओ नोटिस में याचिकाकर्ता के पिछले आचरण को आरोप लगाया गया था, अतः दण्डादेश इस आधार पर भी विधि-विरुद्ध होकर दूषित (विकृत) हो जाता है। अपने इस तर्क के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा रिट याचिका संख्या 1192 (एस/एस) सन् 2019, *संजय मिश्र बनाम निदेशक, संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान एवं अन्य* में दिए गए निर्णय तथा माननीय



सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मोहम्मद यूसुफ खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2010) 10 एससीसी 539 में प्रतिपादित निर्णय पर भरोसा किया है।

52. यह स्थापित कानून है कि याचिकाकर्ता का पिछला आचरण सजा देने के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है जब तक कि इस तरह के आचरण का उल्लेख या तो आरोप पत्र में या कारण बताओ नोटिस में नहीं किया जाता है। लेकिन मौजूदा मामले में, अभिलेखों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पिछले आचरण को जांच अधिकारी द्वारा ध्यान में रखा गया है और साथ ही सजा के आक्षेपित आदेश में इसका संदर्भ दिया गया है, फिर भी पिछला आचरण प्रमुख दंड देने का आधार नहीं है जो कि सेवा से निष्कासन है, बल्कि यह पृष्ठभूमि में से एक हो सकता है, जिसे परिलक्षित किया गया है, लेकिन स्वतंत्र रूप से जांच अधिकारी ने अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप को साबित कर दिया था वर्ष 160 दिन और अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने स्वतंत्र रूप से अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप में सेवा से हटाने का आदेश पारित किया है वर्ष 160 दिन और पिछला आचरण हटाने के आक्षेपित आदेश को पारित करने की नींव नहीं है (महत्व सन्निविष्ट)। इस प्रकार, मोहम्मद मोहम्मद के निर्णय यूसुफ खान (उपरोक्त) और संजय मिश्रा (उपरोक्त) इस मामले के तथ्यों में याचिकाकर्ता के लिए शायद ही कोई फायदा है।

53. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास इस बात पर विचार करने का अवसर था कि क्या अंतिम सजा देते समय पिछले आचरण का संदर्भ प्रासंगिक है या नहीं, खासकर जब इस तरह के पिछले आचरण को आरोप पत्र में एक अलग आरोप लगाने या कोई कारण बताओ नोटिस देने के लिए संदर्भित नहीं किया गया है। पिछले आचरण के संदर्भ के लिए पंजाब राज्य और अन्य बनाम पूर्व सी. सतपाल सिंह 2025 ए.आई.आर. एस.सी. 4011 में दिए गए फैसले में दिए गए प्रस्तर-10, 11, 19 और 20 को नोट करना उचित और लाभदायक है और इसे निम्नानुसार निकाला गया है:

"10. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि तथ्य की बात के रूप में, प्रतिपक्षी की बर्खास्तगी का आदेश पिछले कदाचार पर आधारित नहीं था, बल्कि पूरी तरह से उस कदाचार पर आधारित था जिसके लिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक जांच शुरू की गई थी, जो 04.04.1994 से 12.05.1994 तक लगभग 37 दिनों की अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए थी। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि बर्खास्तगी के आदेश में प्रतिपक्षी के पिछले



आचरण का संदर्भ केवल बर्खास्तगी की सजा देने के निर्णय को महत्व देने के लिए था।

11. ये तर्क दिया जाता है कि इस न्यायालय ने के. मंच गौड़ा के मामले (उपरोक्त) में फैसला सुनाया था कि पिछले आचरण के आधार पर बर्खास्तगी का आदेश पिछले कदाचार का विवरण देने वाले कारण बताओ नोटिस से पहले होना चाहिए, जिस पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सजा देते समय विचार किया जाना है। हालाँकि, प्रस्तुत मामले में, प्रतिपक्षी का पिछला कदाचार बर्खास्तगी की सजा देने का आधार नहीं था और पिछले कदाचार के संदर्भ का केवल उल्लेख किया गया था, इसके अलावा अनुशासनात्मकता जिसके लिए सजा दी गई थी। उपरोक्त तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इंडिया मरीन सर्विस प्राइवेट लिमिटेड बनाम वर्कमेन एंड यूनियन ऑफ इंडिया बनाम बिशम्बर दास डोगरा में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय पर अवलंबन किया है।

19. इस न्यायालय ने, के. मंच गौड़ा के मामले (उपरोक्त) में माना है कि यदि किसी कर्मचारी का पिछला आचरण सजा देने का आधार है, तो विभाग यह खुलासा करने के लिए बाध्य है कि सजा देते समय उसके पिछले अभिलेखों को भी ध्यान में रखा जाएगा। अब, विचार के लिए सवाल उठता है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने बर्खास्तगी आदेश पारित करते समय प्रतिपक्षी के पिछले आचरण को ध्यान में रखा था। यहां ऊपर प्रस्तुत बर्खास्तगी आदेश को ध्यान से पढ़ने से, ऐसा प्रतीत होता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से देखा था कि उसने जांच और निष्कर्ष की रिपोर्ट को अच्छी तरह से देखा था, जिसके तहत प्रतिपक्षी को अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए दोषी ठहराया गया था और जांच अधिकारी के निष्कर्ष से सहमत था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रतिपक्षी को कारण बताओ नोटिस जारी करने के संबंध में आगे उल्लेख किया था और कहा था कि कारण बताओ नोटिस प्राप्त होने के बावजूद, प्रतिपक्षी ने अपना जवाब प्रस्तुत नहीं किया, जिससे पता चलता है कि प्रतिपक्षी ने उसके खिलाफ आरोप को स्वीकार कर लिया था। इसके बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने नोट किया था कि प्रतिपक्षी की 17



दिनों की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप 224 साल की सेवा जब्त कर ली गई थी और जिसके लिए उसे तदनुसार दंडित किया गया था।

20. तैयार किए गए प्रश्न के आलोक में विवाद को ठीक से समझने के लिए, प्रासंगिक न्यायिक उदाहरणों की जांच करना आवश्यक है, जैसा कि नीचे चर्चा की गई है। इंडिया मरीन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने इसी तरह की स्थिति में एक कर्मचारी को दी गई सजा के मामले को निम्नानुसार निपटाया: -

'7. ये सच है कि अंतिम वाक्य से पता चलता है कि बोस के पिछले अभिलेखों को भी ध्यान में रखा गया है। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि उन्हें बर्खास्त करने का यही प्रभावी कारण था। प्रबंध निदेशक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अनुशासन के हित में बोस की सेवाओं को समाप्त किया जाना चाहिए, उन्होंने पहले से ही आए निर्णय को अतिरिक्त महत्व देने के लिए एक वाक्य जोड़ा। इस दृष्टिकोण पर यह निष्कर्ष निकाला जाएगा कि न्यायाधिकरण प्रबंध निदेशक के निष्कर्ष के पीछे जाने और उसके सामने पेश किए गए सबूतों पर विचार करने के लिए सक्षम नहीं था। इसलिए, बोस की बर्खास्तगी को रद्द करने और उनकी पुनः बहाली का निर्देश देने वाले न्यायाधिकरण के आदेश को कानून के विपरीत मानते हुए रद्द किया जाता है।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि यह वांछनीय है कि अपराधी कर्मचारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सूचित किया जा सकता है कि सजा देते समय उसके पिछले आचरण को ध्यान में रखा जाएगा। लेकिन गंभीर प्रकृति के कदाचार या अनुशासनहीनता के मामले में, वैधानिक नियमों के अभाव में भी, प्राधिकरण दंड लगाने के निर्णय में वजन जोड़ने के लिए कर्मचारी के निर्विवाद पिछले आचरण/सेवा अभिलेखों को ध्यान में रख सकता है, यदि मामले के तथ्यों की आवश्यकता होती है।

54. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल और अन्य बनाम अबरार अली के मामले में (2017) 4 एस.सी.सी. 507 में रिपोर्ट किया है कि अनुशासनहीनता और लापरवाही के कार्य के कारण पहले की सजा पर विचार करने के बाद सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दोहरे

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



खतरे की राशि नहीं है और अपराधी कर्मचारी के पिछले आचरण को ध्यान में रखा जा सकता है और आगे निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"13. अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों के विपरीत, उच्च न्यायालय ने प्रतिपक्षी के इस कथन को स्वीकार कर लिया कि वह बीमार पड़ गया था और बिना कोई कारण बताए एक स्थानीय डॉक्टर द्वारा उसका इलाज किया जा रहा था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा यह माना गया था कि यूनिट में बेहतर चिकित्सा सुविधाएं थीं जिनका लाभ प्रतिपक्षी द्वारा उठाया जा सकता था यदि वह वास्तव में बीमारी से पीड़ित था। यह भी माना गया कि अपराधी ने स्थानीय डॉक्टर द्वारा इलाज का कोई सबूत पेश नहीं किया। उच्च न्यायालय को उन तथ्यों के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए था जो साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन के समान हैं। यह स्थापित कानून है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में साक्ष्य की पुनः मूल्यांकन की अनुमति नहीं है।

55. इस प्रकार, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रस्तुत मामले में भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दंड लगाते समय केवल आदतन अनुपस्थिति के पिछले आचरण का उल्लेख किया था। सेवा से हटाने का आदेश निरंतर कदाचार के आरोपों के संचयी प्रभाव पर आधारित नहीं है जो पुलिस सेवा के लिए असुधार्यता और पूर्ण अयोग्यता है, इसलिए, केवल पिछले आचरण का संदर्भ सेवा से हटाने के लिए आधार नहीं होगा। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में या जांच रिपोर्ट में पिछले आचरण का संदर्भ शायद ही कोई प्रासंगिकता है।

56. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जांच रिपोर्ट में निहित सिफारिश की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है कि आरोपों के साबित होने के मद्देनजर 'सेवा से हटाने' का बड़ा दंड लगाया जा सकता है और आगे आग्रह किया कि इस तरह की सिफारिश जांच अधिकारी की क्षमता से परे है, क्योंकि यह अंतिम आदेश पारित करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दिमाग को पक्षपाती बना देगा। उक्त दलील को प्रमाणित करने के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा सेवा पीठ संख्या 6202 वर्ष 2016 'उत्तर प्रदेश राज्य के माध्यम से सचिव गृह विभाग और अन्य बनाम राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण इंदिरा और अन्य' में दिए गए निर्णय पर अवलंबन किया है और उक्त प्राधिकरण के आधार पर यह प्रस्तुत किया गया है कि नियम 14(1) वर्ष 1991 के नियमों के संदर्भ में परिशिष्ट I में प्रावधान है कि जांच अधिकारी निम्नलिखित

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



के लिए सिफारिश कर सकता है सजा देने के लिए लेकिन ऐसी सिफारिश जांच रिपोर्ट के साथ स्वीकार्य नहीं है, बल्कि जांच अधिकारी इन कार्यवाहियों से अलग भी हो सकता है, आरोपित पुलिस अधिकारी को दी जाने वाली सजा के संबंध में अपनी सिफारिश कर सकता है। नियमों के नियम 14(1) के तहत परिशिष्ट-1 में निम्नानुसार प्रावधान है:

".....कार्यवाही में साक्ष्य और निष्कर्ष के बयान और उसके आधार का पर्याप्त अभिलेखों होगा। जांच अधिकारी इन कार्यवाहियों से अलग से आरोपित पुलिस अधिकारी को दी जाने वाली सजा के संबंध में अपनी सिफारिश भी कर सकता है।"

57. उपरोक्त प्रावधान स्वयं यह दर्शाता है कि 'अलग-अलग' शब्द से सिफारिश को स्पष्ट रूप से/अलग से किया जाना चाहिए, लेकिन मामले में, सिफारिश अलग से नहीं की गई है, और यह जांच रिपोर्ट के साथ की गई है। यदि परिशिष्ट 1 अलग से सिफारिश करने पर विचार करता है, तो जांच अधिकारी के लिए अलग से सिफारिश करना आवश्यक था। यदि सिफारिश समग्र है, तो यह दोषपूर्ण है और उक्त सिफारिश परिशिष्ट-1 की आवश्यकता को पूरा नहीं करेगी। यदि कानून में किसी विशेष कार्य को किसी विशेष तरीके से करने की आवश्यकता होती है, तो इसे केवल उसी तरीके से किया जाना चाहिए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंधारा सिंह और अन्य ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 358** के मामले में यह कहा है। अतिरिक्त स्थायी अधिवक्ता न तो यह बता सके और न ही कोई ठोस तर्क दे सके कि जांच अधिकारी द्वारा समग्र तरीके से सजा की सिफारिश की जाएगी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क कि सिफारिश वाली एक समग्र जांच रिपोर्ट नहीं होनी चाहिए, बल्कि अलग से इस न्यायालय के पक्ष में पाती है और याचिकाकर्ता के पक्ष में फैसला किया जाता है।

58. याचिकाकर्ता ने आगे **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एस.सी.सी. 772** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया और प्रस्तर-22 की ओर इशारा किया जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में है। उसे विभाग/अनुशासन प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है, उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जांच करना है। कानून की स्थापित स्थिति पर कोई झगड़ा नहीं हो सकता है, लेकिन सरोज कुमार सिंह (उपरोक्त) के मामले में प्राधिकरण याचिकाकर्ता को कोई सहायता नहीं



देता है क्योंकि जांच अधिकारी के खिलाफ कोई पक्षपात नहीं किया गया है और यह कहीं भी दलील नहीं दी गई है कि जांच अधिकारी ने एक स्वतंत्र निर्णायक के रूप में काम नहीं किया था।

59. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अंत में **मिर्जा बरकत अली बनाम पुलिस महानिरीक्षक इलाहाबाद और अन्य (2002) 2 यू.पी.एलबीईसी 1871** और **राम उज्ज्वल यादव बनाम राम उजागर यादव बनाम** के मामले में समन्वय पीठ द्वारा पारित इस न्यायालय के फैसले पर अवलंबन किया है। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (सिविल विविध रिट याचिका संख्या 2316 वर्ष 1999) दिनांक 06.03.2006 को प्रस्तुत किया गया था और प्रस्तुत किया गया था कि सजा की मात्रा आरोपों की गंभीरता के साथ अनुपातहीन है, लेकिन चेन्नई मेट्रोप्लिटन जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड और अन्य बनाम टीटी मुरली बेबी के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में यह अब और अधिक नहीं है। कदाचार को सजा देने के लिए एक सीधे-सीधे फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है, जो विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है और बर्खास्तगी के आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बहाल किया गया था, लेकिन साथ ही याचिकाकर्ता की सेवा की अवधि को ध्यान में रखते हुए, और अंतरिम में सेवानिवृत्ति और पदोन्नति की स्वीकृत स्थिति इस मामले की विशिष्ट विशेषताएं हैं, इस न्यायालय को अलग दृष्टिकोण लेने के लिए प्रेरित करता है।

60. दण्ड की असंगत अथवा अनुपातहीन प्रकृति के संबंध में प्रदान की जाने वाली राहत के विषय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *भारत संघ एवं अन्य बनाम दत्ता लिंगा तोशटवाड़* [2006 एससीसी (एल एण्ड एस) 1504] में यह प्रतिपादित किया है कि उच्च न्यायालय इस बात के लिए सक्षम है कि वह दण्ड के प्रश्न पर पुनर्विचार हेतु प्रकरण को अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष पुनः प्रेषित कर दे। अतः इस प्रकरण के विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, दण्ड के संबंध में उपयुक्त निर्णय लिए जाने हेतु मामला अनुशासनिक प्राधिकारी को पुनः विचारार्थ प्रेषित किया जाता है। याचिकाकर्ता ने कुल 36 वर्ष की सेवा प्रदान की है, जिसमें सेवा से पृथक्करण से पूर्व 16 वर्ष की सेवा तथा इस न्यायालय द्वारा प्रदत्त अंतरिम संरक्षण के आलोक में पुनर्बहाली के पश्चात 20 वर्ष की सेवा सम्मिलित है। साथ ही, वर्ष 2016 में उसे प्रधान आरक्षी (हेड कांस्टेबल) के पद पर पदोन्नत भी किया गया था। इस प्रकार, उन 4 वर्षों को छोड़कर, जिनके दौरान याचिकाकर्ता सेवा से बाहर रहा, उसने कुल 36 वर्ष की सेवा पूर्ण कर ली है, अधिवार्षिकी (सेवानिवृत्ति) की आयु प्राप्त कर ली है तथा वर्तमान में अस्थायी पेंशन प्राप्त कर रहा है।



61. यह विधि का सुव्यवस्थित एवं स्थापित सिद्धान्त है कि किसी विशिष्ट दण्ड को अधिरोपित करने के संबंध में दण्ड निर्धारण प्राधिकारी द्वारा प्रयुक्त विवेकाधिकार में न्यायालय अथवा अधिकरण सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं कर सकता। तथापि, इस सिद्धान्त का एक अपवाद भी है। यदि अधिरोपित दण्ड अत्यधिक असंगत, अत्यन्त कठोर अथवा सिद्ध कदाचार की प्रकृति एवं गंभीरता के अनुपात में न हो, तो न्यायालय उसमें हस्तक्षेप कर सकता है। यह सिद्धान्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *अलेक्जेंडर पाल सिंह बनाम मंडलीय परिचालन अधीक्षक* [1987 (ए.टी.सी.) 922] के प्रकरण में प्रतिपादित किया गया है।

G. निष्कर्ष

62. यह न्यायालय इस तथ्य से पूर्णतः अवगत है कि रिट याचिकाकर्ता अधिवार्षिकी (सेवानिवृत्ति) की आयु प्राप्त कर चुका है, विभाग में कुल 36 वर्ष तक सेवा प्रदान कर चुका है तथा इस मध्यावधि में उसे पदोन्नति भी प्राप्त हुई थी। वर्तमान में वह अस्थायी पेंशन प्राप्त कर रहा है। अतः उपर्युक्त निर्विवाद तथ्यात्मक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए, इस प्रकरण के विशेष तथ्यों एवं परिस्थितियों में सेवा से पृथक्करण (हटाए जाने) के आदेश को स्वीकार नहीं किया जाता है तथा मामले को नवीन निर्णय हेतु संबंधित प्राधिकारी के समक्ष पुनः प्रेषित किया जाता है, क्योंकि वर्ष 1991 के नियमों के नियम 14(2) में निहित अनिवार्य उपबंध के बावजूद दण्ड की मात्रा (क्वांटम ऑफ पनिशमेंट) के संबंध में याचिकाकर्ता से कोई प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं किया गया था।

63. तदनुसार, विवादित आदेशों को **रद्द/अपास्त** किया जाता है तथा अनुशासनिक प्राधिकारी को निर्देशित किया जाता है कि वह सेवा से बर्खास्तगी अथवा सेवा से पृथक्करण (हटाए जाने) के दण्ड को छोड़कर किसी अन्य उपयुक्त दण्ड के अधिरोपण पर विचार करे तथा इस संबंध में आवश्यक आदेश पारित करे। साथ ही, सेवा से पृथक्करण के आदेश के निरस्त किए जाने के परिणामस्वरूप प्रस्तावित दण्ड की मात्रा (क्वांटम ऑफ पनिशमेंट) के संबंध में याचिकाकर्ता को विधिवत् नोटिस देकर, अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के वेतन के संबंध में भी नया आदेश पारित किया जाए।

64- इस न्यायालय द्वारा प्रतिप्रेषण (रिमाण्ड) किए जाने के अनुपालन में सक्षम प्राधिकारी, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से एक माह के भीतर नवीन आदेश पारित करेगा। तत्पश्चात्, याचिकाकर्ता के समस्त परिणामी सेवानिवृत्तों देयों (पोस्ट-रिटायरल लाभों) का पुनर्गणना कर उन्हें आगामी एक माह के भीतर निर्गत एवं भुगतान किया जाएगा।



65. तदनुसार, रिट याचिका को उपरोक्त शर्तों में आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

66. व्यय आसान है।

दिनांक: 20.01.2026

Translated Version. Not for Legal Use.